KASHMIRI LAL DED

BY

SHIV KRISHAN RAINA

कश्मीरी

ललद्यद

(नागरी लिप्यन्तरण-सहित हिन्दी अनुवाद)

अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार

डॉ० शिबनकृष्ण रैणा

संस्कृत अनुवाद

आचार्य श्री रामजी शास्त्री

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ—२२६००३

प्रथम संस्करण—
१९७७ ई०

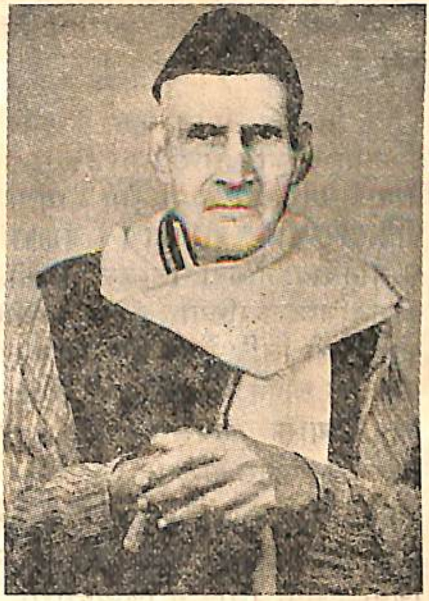
Rs 8/- only.

मूल्य— ७०० रुपया

मुद्रक:—
वाणी प्रेस
भुवन वाणी ट्रस्ट
'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-२२६००३

भूमिका

एक दिन लखनऊ से भेजा गया एक पत्र मुझे मिला, जिसका सारांश यह था 'मैं कोटद्वार होते हुए दिल्ली जाना चाहता हूँ, ताकि आपसे मिल सकूँ।' प्रेषक थे श्रीयुत नन्दकुमार अवस्थी, जिनके शुभ नाम तथा महत्वपूर्ण काम से मैं तब तक बिल्कुल अपरिचित ही था और मैंने यह लिखकर उन्हें रोकने का प्रयत्न किया कि लखनऊ से तो दिल्ली का सीधा रास्ता है, व्यर्थ ही अपव्यय क्यों करते हैं; पर वे नहीं माने और अपने एक सहयोगी के साथ कोटद्वार पधारे।



श्री नन्दकुमार अवस्थी जी से मिलकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई, पर साथ-साथ लज्जा का भी अनुभव हुआ कि उनकी अद्भुत सेवाओं से मैं अब तक क्यों अपरिचित रहा ?

जब श्री अवस्थी जी ने ढाई सौ रुपये के मूल्य के १४ ग्रन्थ मुझे भेंट किये तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने उनसे निवेदन भी किया कि उनके ग्रन्थ मैं किसी पुस्तकालय से खरिदवा दूँगा, पर वे नहीं माने और केवल इतना ही कहा—"यदि आप अपने पास आने वालों को यह ग्रन्थ दिखला दिया करें, तो मेरे लिए यही पर्याप्त होगा।"

तब से मैं उनके उस आदेश का पालन करता रहा हूँ और नतीजा यह हुआ कि मेरे यहाँ पधारने वाले अनेक व्यक्ति भी मेरी तरह श्री अवस्थी जी के प्रशंसक बन गये हैं।

हमारा देश बड़ा विस्तृत है और उसमें अनेक भाषाओं के बोलने वाले व्यक्ति रहते हैं। उनमें पारस्परिक विचार-परिवर्तन के लिए किसी सम्पर्क भाषा की जरूरत थी और हिन्दी को वह गौरवपूर्ण स्थान मिल भी रहा है, पर उससे भी अधिक उपयोगी कार्य है समान लिपि का होना। जस्टिस शारदाचरण मित्र ने बहुत वर्षों पहले इसके महत्व को समझ

लिया था, पर वे उसे कार्यरूप में अधिक आगे बढ़ा नहीं सके। भाषाई सेतुबन्ध का यह पवित्र कार्य श्री नन्दकुमार अवस्थी जी ने सफलतापूर्वक किया है और उन्हें 'सांस्कृतिक इंजीनियर' की उपाधि दी जा सकती है।

मध्यम श्रेणी का यह परिवार आजादी की लड़ाई के फल-स्वरूप त्रस्त रहा। सन् ४२ में उत्तरप्रदेश और बिहार के क्रान्तिकारियों का इनके यहाँ नित्य का जमघट रहा। श्री अवस्थी के छोटे भाई श्री कृष्णकुमार अवस्थी (इस समय आयुर्वेदाचार्य बी. आई. एम. एस.) अपनी १६ वर्ष की अवस्था में ही डी. आई. आर. में जेल भेज दिये गये। ये स्व० श्री योगेशचन्द्र चटर्जी के विश्वस्थ अनुयायी थे। अन्त में आर्म्स एक्ट में इनको सज़ा हुई।

आज़ादी प्राप्त होने के बाद श्री अवस्थी ने लेखन-प्रकाशन का सफलता से काम चलाया। किन्तु सन् १९४७ से ही जन्मजात स्वभाव-वश भाषाई-सेतुबन्धन के राष्ट्रीय कार्य में लग गये और निजी प्रकाशन का काम धीरे-धीरे चौपट हो गया। बंगला कृत्तिवास रामायण और क़ुर्आन शरीफ़ के सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण को पहले हाथ में लिया। अ़रबी क़ुर्आन की विशिष्ट ध्वनियों और शास्त्रीय पद्धति की नज़ाकतों के जटिल काम को नागरी लिपि में उतारने, उन अक्षरों और चिह्नों को गढ़ने और फिर ग्रन्थ को छापने में २० वर्ष लगे। यह लगभग एक पीढ़ी का समय है, जिसमें व्यक्ति कार्यक्षेत्र से प्रायः अवकाश प्राप्त कर लेता है। इस बीस वर्ष के कार्यकाल में आय का स्रोत बन्द हो जाने से श्री अवस्थी सपरिवार दयनीय आर्थिक संकट से गुज़रते रहे। किन्तु उनकी अनन्य निष्ठा और लगन ने कार्य को सर्वांग सफलता प्रदान की। क़ुर्आन के अ़रबी पाठ को किसी अन्य लिपि में लिप्यन्तरित करना इस्लामी धर्मशास्त्र को मान्य नहीं, और उनके पास इसके पक्ष में उचित आधार हैं। किन्तु श्री अवस्थी ने जिस ईमानदारी, अनन्यता और परिपूर्णता से इस कार्य को प्रस्तुत किया, उसके परिणाम-स्वरूप इस्लामी धर्माचार्यों और हिन्दी-अहिन्दी-भाषी समग्र जनता ने इस महत्वपूर्ण कार्य को आशातीत सम्मान प्रदान किया।

इस अपूर्व स्वागत से प्रोत्साहित होकर अब अवकाश लेने के बजाय, उन्होंने १९६९ ई० में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' (पञ्जीकृत) की स्थापना करके विश्व की, और प्रमुखतः भारतीय भाषाओं के सत्साहित्य को नागरी लिपि में सानुवाद प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया। और आज इस अल्प अवधि में विविध भाषाविदों के सहयोग से इतना विशाल सत्साहित्य जनता के सामने प्रस्तुत कर दिया है जो सरकारी-गैरसरकारी संस्थाओं में भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। श्री अवस्थी निजी सारे साधनों को ट्रस्ट हेतु अर्पण करके, इस ७० वर्ष

की आयु में भी अहर्निश भाषाई-सेतुबन्धन के पुनीत कार्य में अवैतनिक लगे हुए हैं। उनके सामान्य जीवन-निर्वाह का भार भी ट्रस्ट पर नहीं है। उल्लेखनीय है कि श्री अवस्थी के एकमात्र पुत्र चिरञ्जीव विनयकुमार अवस्थी उनके, एवं ट्रस्ट के कार्यों में पूरा सहयोग दे रहे हैं। अरबी, बंगला, असमिया, उर्दू, मलयाळम और तमिळ के नागरी लिप्यन्तरण में उन्होंने पर्याप्त कुशलता प्राप्त की है। ट्रस्ट की एक विद्वत्परिषद् है, और उसको अनेक भाषाविदों का अनन्य सहयोग प्राप्त है।

अभी तक जो ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, और जो यन्त्रस्थ हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

ट्रस्ट की स्थापना से पूर्व (अरबी) क़ुर्आन शरीफ़—श्रीअवस्थी की निजी आय का साधन, और (बंगला) कृत्तिवास रामायण (ट्रस्ट को समर्पित); तथा ट्रस्ट के कार्यकाल में (मलयाळम) महाभारत, (कन्नड) रामचन्द्र चरित पुराणं जैन सम्प्रदाय, (कश्मीरी) रामावतार चरित, (कश्मीरी) लल् द्यद, (नेपाली) भानुभक्त रामायण, (राजस्थानी) रुक्मिणी मंगळ, (मराठी) श्रीरामविजय, (तमिळ) तिरुक्कुरळ, (अरबी) हदीस ज़ादे सफ़र, (उर्दू) शरीफ़ज़ाद:, (तेलुगु) मोल्ल रामायण, (फ़ारसी) सिर्रे अक्बर—दाराशिकोह कृत उपनिषद्-भाष्य प्रथम खण्ड, (गुरमुखी) श्री जपुजी सुखमनी साहब।

उपर्युक्त सम्पूर्ण हो चुके ग्रन्थों के अतिरिक्त, निम्न ग्रन्थों का मुद्रण-प्रकाशन चल रहा है:—

(तमिळ) कम्ब रामायण, (बंगला) कृत्तिवास रामायण उत्तरकाण्ड, (मलयाळम) अध्यात्म रामायण, (गुजराती) गिरधर रामायण, (मराठी) श्री हरिविजय, (असमिया) माधव कंदली रामायण, (तेलुगु) रंगनाथ रामायण, (तेलुगु) पोतन्न कृत महाभागवतमु, (ओड़िया) बैदेहीश बिलास, (सिन्धी) स्वामी, शाह, सचल की त्रिवेणी, (उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ, (फ़ारसी) सिर्रे अक्बर २, ३ खण्ड, और (गुरमुखी) श्री गुरुग्रन्थ साहिब का वृहद् धर्मग्रन्थ। ध्यान रखने की बात है कि इन सभी ग्रन्थों में यथावश्यकता अनुवाद के अतिरिक्त, नागरी लिपि में मूलपाठ भी दिया गया है; और प्राय: ये सभी ग्रन्थ विशाल हैं। विविध भाषाओं के विशिष्ट स्वर-व्यञ्जन, जो नागरी लिपि में अनुपलब्ध हैं, उनको सुपरिचित ढंग पर गढ़ कर परिवर्द्धित [illegible] नागरी [illegible]लिपि में सम्मिलित किया गया है। यह [illegible] देश में अन्यत्र किसी प्रेस में उपलब्ध नहीं है; और इसका सारा श्रेय श्री अवस्थी जी को है।

श्री अवस्थी के सम्पादकत्व में 'वाणीसरोवर' त्रैमासिक पत्र प्रकाशित होता है। इसमें उपर्युक्त ग्रन्थों में से अनेक के ८-८ पृष्ठ धारावाहिक दिये जाते हैं। हिन्दी के अनुपम ग्रन्थ 'रामचरितमानस' के मूलपाठ एवं अनुवाद सहित ओड़िया, बँगला और संस्कृत संस्करण भी प्रकाशित हो रहे हैं। सम्प्रति श्री अवस्थी क़ौरानिक कोश (पठनक्रम), क़ौरानिक कोश (वर्णानुक्रम), और एक वृहत् नागरी उर्दू हिन्दी कोश की तैयारी में रत हैं। इन कोशों में अरबी-फ़ारसी के संदेहपरक (मुश्तबहुस्सौत) अक्षरों को नागरी लिपि में प्रस्तुत किया जा रहा है। जैसे सीन, से, स़ाद और जीम, जाल, ज़े, ज़ाद, ज़ो; इनको पृथक् व्यक्त न करने से शब्दों के अर्थ का अनर्थ अथवा विपरीत अर्थ निश्चित है।

क़ुर्आन शरीफ़, गुरुग्रन्थ साहिब, रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थों का ही सानुवाद लिप्यन्तरण क्यों? इसके समाधान में श्री अवस्थी का कथन है कि मानव को श्रेष्ठमानव बनाने, सदाचार प्रदान करने, मानव मात्र में पार्थक्य (बिलगाव) की भावना को दूर कर विश्वबन्धुत्व की सद्-भावना को जगाने में ये ग्रन्थ ही समर्थ हैं। इस प्रकार के पूज्य ग्रन्थों को जनता अपने द्रव्य से खरीदकर, श्रद्धा से और अनेक बार पढ़ती और उनसे प्रेरणा लेते नहीं थकती है। फिर, कथानक सुपरिचित होने और अपनी सुपरिचित लिपि में प्राप्त होने पर संस्कृत के तत्सम-तद्भव तथा यत्र-तत्र तैरकर पहुँचनेवाले क्षेत्रीय शब्दों की सहायता से दूसरी भाषाएँ भी सरलता से बोधगम्य होती हैं। बिना कटुता और स्पर्धा के राष्ट्रभाषा तथा क्षेत्रीय भाषाओं की समान उन्नति और विस्तार, एवं लिपि और भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय-एकीकरण, इन जाने-सन्माने शाश्वत ग्रन्थों के बल पर ही सम्भव है।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस महान यज्ञ के मार्ग में उन्हें अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा, जिनमें आर्थिक कठिनाइयाँ मुख्य थीं। इसमें केवल उन्हें ही नहीं, उनके घर वालों को भी बहुत परेशानी उठानी पड़ी। फिर भी कुछ सहायक मिलते रहे और उनके सहयोग से मिशनरी कार्य अब भी चल रहा है।

श्री अवस्थी जी में कृतज्ञता की भावना भरपूर मात्रा में पाई जाती है और वे अपने प्रति उपकार करनेवालों को भूलते नहीं। उन्होंने स्वयं बन्धुवर श्रीनारायण जी चतुर्वेदी, प्रमुख उद्योगपति शेरवानी साहब तथा श्री जयदयाल जी डालमिया की सहायता का उल्लेख बातचीत के सिल-सिले में कई बार किया।

जो कार्य अकेले श्री अवस्थी जी ने कर दिखाया है उसे कोई साधन-सम्पन्न संस्था भी मुश्किल से कर सकती थी। आज के युग में देश में कितने

व्यक्ति हैं जो इतनी लम्बी अवधि तक एक पुनीत कार्य में निस्पृह लगे रहते हैं! हर्ष की बात है कि जनता तथा सरकार भी धीरे-धीरे उनके कार्य के महत्व को समझने लगी है। सन् १९७५ ई० में नागपुर विश्व हिन्दी सम्मेलन में उनको सम्मानित किया गया और भारत सरकार ने १९७६ ई० में उन्हें पद्मश्री की उपाधि से अलंकृत किया था। पर यह पवित्र कार्य बहुत मन्द गति से हो रहा है। कम से कम हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों का यह कर्तव्य था कि वे अवस्थी जी को प्रचुर आर्थिक सहायता देते और केन्द्रीय सरकार का भी यही कर्तव्य है। साहित्य जगत में भी वे सर्वोच्च सम्मान के अधिकारी हैं।

भविष्य में जो कार्य श्री अवस्थी जी करना चाहते हैं उनकी चर्चा तो यह हुई। अब इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए प्रचुर साधन भी चाहिये। यह कोई विवाद-ग्रस्त ग्रंथ तो हैं नहीं, और सभी जातियों तथा धर्मों के मनुष्य और सभी राजनैतिक दल इसमें सहायक हो सकते हैं। यह जानकर हमें आश्चर्य हुआ कि क़ुर्आन के सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण की प्रतियाँ हिन्दी-भाषा-भाषियों की अपेक्षा अहिन्दी-भाषा-भाषियों में कहीं अधिक बिकीं।

श्री अवस्थी जी की संस्था 'भुवन वाणी ट्रस्ट' के सम्पूर्ण कार्य की अधिकारपूर्ण समीक्षा तो अनेक भाषाओं के विद्वान् ही कर सकते हैं और यह काम हमारे बूते का नहीं।

सुप्रसिद्ध अमरीकी लेखक एमर्सन का कथन है— "संस्थाएँ तो मनुष्य की विस्तृत छाया मात्र होती हैं" (An institution is the lengthend shadow of a man.); और इस प्रकार भुवन वाणी ट्रस्ट भी श्रीनन्दकुमार अवस्थी के प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाया मात्र है।

अभी लगभग एक मास पूर्व अवस्थी जी का पत्र आया जिसमें ट्रस्ट द्वारा नव प्रकाशित कश्मीरी भाषा की 'लल् द्यद' पर भूमिका लिखने का अनुरोध था। किसी पुस्तक की भूमिका लिखते समय प्रतिपाद्य विषय वह पुस्तक ही होती है। मुझे कश्मीरी भाषा का ज्ञान नहीं है, इसलिए मैंने युवराज डॉ० कर्णसिंह जी अथवा अन्य दो-एक कश्मीरी भाषा के विद्वानों से भूमिका लिखने के लिए पत्र लिखना चाहा। किन्तु श्री अवस्थी ने पुनः अनुरोध किया कि भुवन वाणी ट्रस्ट के मिशन में भूमिका का प्रतिपाद्य विषय पुस्तक-विशेष नहीं है। प्रतिपाद्य विषय तो भाषाई [illegible]करण का उद्देश्य और उसकी पूर्ति [illegible] लिए किया जा रहा कार्य है।

अवस्थी जी की बात में बल था। मैंने भूमिका लिखना स्वीकार कर लिया। उसी के फलस्वरूप भुवन वाणी ट्रस्ट और उसके प्रतिष्ठाता श्री नन्दकुमार अवस्थी के सम्बन्ध में उपर्युक्त विवरण, जानकारी के अनुरूप मैंने प्रस्तुत किया है। वैसे, पवित्र उद्देश्य, संकल्प, श्रम और उपलब्धि की दृष्टि से उनकी जितनी सराहना की जाय, कम है। जहाँ तक 'लल् द्यद' की पुस्तक का सम्बन्ध है, प्रकाशकीय परिशिष्ट और अनुवादक महोदय के वक्तव्यों में पर्याप्त सामग्री मौजूद है। पुस्तक में दार्शनिक कवयित्री लल के १७९ वाक्यों का नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी गद्यानुवाद, और संस्कृत पद्यानुवाद दिया गया है। कश्मीरी भाषा की मौजूदा लिपि फ़ारसी है। किन्तु स्वरों के उच्चारण और प्रयत्नों में कश्मीरी भाषा के कुछ अपने रूप हैं। एक वर्णमाला चार्ट है जिसमें कश्मीरी लिपि के अक्षरों तथा उसकी विशिष्ट आ'राब (मात्राओं) को नागरी लिपि में प्रस्तुत करते हुए, उनके विशिष्ट उच्चारण पर भी प्रकाश डाला गया है। अनुवाद के साथ मिलान करने पर स्पष्ट पता चलता है कि अधिकांश शब्दों का मूल उद्‌गम संस्कृत भाषा ही है। अलबत्ता कालान्तर में फ़ारसी-अरबी शब्दों का सन्निवेश होता रहा है। भूमिका का प्रतिपाद्य विषय भुवन वाणी ट्रस्ट और श्री अवस्थी का कार्यकलाप है। प्रस्तुत पुस्तक 'लल् द्यद' उस कार्य-समूह की एक इकाई मात्र है।

अन्त में श्री अवस्थी और भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा किये जा रहे पुनीत वाणीयज्ञ की उत्तरोत्तर सर्वाङ्ग सफलता की कामना करता हूँ।

उन्होंने घर बैठे मुझे अपने दर्शन दिये तदर्थ मैं उनका बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ।

बनारसी दास
[डॉ० बनारसीदास चतुर्वेदी (पद्मभूषण)]
कोटद्वार, गढ़वाल

दिनाङ्क २३ मार्च, १९७७

समर्पण

गगन च्रुय बूतल च्रुय
च्रुय द्यन पवन तु राथ,
अरुग च्रंदन पोश पोन्य च्रुय
च्रुय छुख सकलय तु लाग्यज़ि क्याह

(तू ही गगन है, तू ही भूतल है। तू ही दिन, पवन और रात है। अर्घ्य, चंदन, पुष्प पानी भी तू ही है। तू ही सब कुछ है तो फिर (हे देव!) तुझे क्या चढ़ाऊँ? —लल् द्यद।

कश्मीर की दार्शनिक
आदि-कवयित्री **लल्द्यद**
(सुश्री लल्लेश्वरी) के वाखों (वाक्यों)
का यह सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण
उसी देवी की पुण्य स्मृति में
भगवदर्पण।

[signature]

मुख्यन्यासी सभापति
भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

विषय-सूची

प्रकाशकीय परिशिष्ट

विषय-प्रवेश—

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद, राष्ट्र के विधान की रचना हुई। उसमें मनीषियों ने राष्ट्र की व्यवस्था में, भाषा और लिपि के संबंध में भी निर्णय लिया। भारत जैसे विशाल देश के विभिन्न अञ्चलों में विभिन्न भाषाओं और लिपियों का प्रचलन है। वे सभी भाषाएँ बहुमूल्य साहित्य से संपन्न हैं, और उस समग्र साहित्य में एक-भारतीय और एक-मानवीय झलक है। भाषा समझने की कोई बड़ी कठिनाई नहीं है। प्रायः सबमें संस्कृत का प्रचुर शब्द-भण्डार, तत्सम अथवा तद्भव रूप में विद्यमान है। अँग्रेज़ी तथा अरबी और फ़ारसी के शब्द भी पर्याप्त संख्या में समान रूप से सभी भाषाओं में पैठ चुके हैं। गुरुमुखी, सिन्धी आदि प्राचीन साहित्य को आज के वहाँ के निवासियों की अपेक्षा, हिन्दीभाषी अधिक सरलता से समझ सकते हैं। सभी भाषाओं के क्षेत्रीय शब्द यातायात, एक-राष्ट्रीयता और एक-संस्कृति होने के फलस्वरूप आपस में घुल-मिल गये हैं। यह भी तथ्य ही है कि देश के किसी भी अञ्चल में जाने पर टूटी-फूटी हिन्दी और क्षेत्रीय भाषा की मिली-जुली बोली से काम, आज ही नहीं, पुरातन से चलता आ रहा है। अलबत्ता लिपि की कठिनाई जरूर है। यह किसी व्यक्ति के वश की बात नहीं कि वह भारत में व्यवहृत २०-२२ लिपियों को सीख ले और तब उन सभी लिपियों से सम्बन्धित भाषाओं के वाङ्मय और सत्साहित्य से लाभान्वित हो सके, अथवा भाषा के सेतु द्वारा परस्पर घुल-मिल सके।

इसलिए विचारक-वृन्द सदैव इस पर एकमत रहा है कि इन सब भाषाओं को एक सूत्र में बाँधने के लिए एक जोड़लिपि को अपनाया जाय और उसके लिए देवनागरी लिपि ही अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त है। सारांश यह कि सारी लिपियों के सदैव फूलते-फलते रहने के अलावा, देवनागरी लिपि को भी, जोड़लिपि के तौर पर, अपनाया जाय; सभी भाषाओं के सत्साहित्य को नागरी लिपि में लिप्यन्तरित किया जाय। राष्ट्रीय एकीकरण को अक्षुण्ण रखने के लिए राष्ट्र की सभी भाषाओं का पवित्र साहित्य समस्त देश की सम्पत्ति बन जाय। यह जोड़लिपि का काम किसी समय ब्राह्मी लिपि द्वारा उपलब्ध था; आज आवश्यकता है कि नागरीलिपि को उस पुनीत उद्देश्य के लिए अपनाया जाय।

अस्तु। यह विचार मेरे मस्तिष्क में घूम रहे थे। राष्ट्रीय विधान

में भी उसी दिशा में निर्णय लिया गया। सन् १९४७ ई० से मैंने अन्य भाषाओं के देवनागरी लिप्यन्तरण का कार्य आरंभ किया। संयोग की बात कि विश्वविख्यात इस्लामी धर्मग्रन्थ 'क़ुर्आन' का सानुवाद लिप्यन्तरण प्रस्तुत करने की प्रथम अभिलाषा हुई। काम आरम्भ करने के बाद वह अनुमान से कहीं अधिक जटिल साबित हुआ। वैसे तो भारतीय भाषाओं के ही कई व्यञ्जनों और स्वरों के प्रतिनिधि रूपों का नागरी में अभाव है; किन्तु अरबी लिपि की तो अनेक ध्वनियों के समावेश से नागरी लिपि को परिवर्द्धित करने की आवश्यकता सामने आई। धर्मग्रन्थ होने के नाते अनेक शास्त्रीय बातों का भी ध्यान रखना ज़रूरी था। किसी न किसी प्रकार भगवान् की कृपा से वह भगीरथ कार्य सन् १९६९ ई० के आरम्भ में प्रकाशित होकर जनता के सामने आया। परिश्रम ठिकाने से लगा। देश की हर जमात ने उस श्रम की सराहना की, सब ने क़द्र की। इसी बीच गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस से एक शती प्राचीन बंगला की लोकप्रिय 'कृत्तिवासी रामायण' के पाँच काण्डों का देवनागरी लिप्यन्तरण और (अवधी) हिन्दी में पद्यानुवाद भी मैंने प्रस्तुत किया।

इस २०-२२ वर्ष के सतत और क्लेशकर श्रम के उपरान्त, कुछ विश्राम मिला, यश मिला, सराहना मिली। विद्वान् और आम जनता, सर्वत्र इस श्रम के प्रति उपलब्ध समादर से उत्साह में वृद्धि हुई। फलस्वरूप भाषाई सेतुकरण, एक भाषा का दूसरी भाषा में प्रतिविम्बीकरण, और राष्ट्रसमन्वय के उपर्युक्त पुनीत उद्देश्य के प्रति संकल्प प्रबलतर हो उठा। कुछ महीनों बाद ही, उसी १९६९ ई० में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' नामक पञ्जीकृत संस्था की स्थापना की। नागरी लिपि में परिवर्द्धन और देश में प्रचलित प्रायः सभी भाषाओं के ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण का कार्य आरम्भ हुआ। ट्रस्ट का यह प्रयास देश में अद्वितीय है। देशी-विदेशी भाषाओं के अनेक ग्रन्थों का सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण प्रकाशित हुआ। उसी योजना में कश्मीरी भाषा की यह दूसरी पुस्तक 'लल् द्यद' आज पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

लल् द्यद—

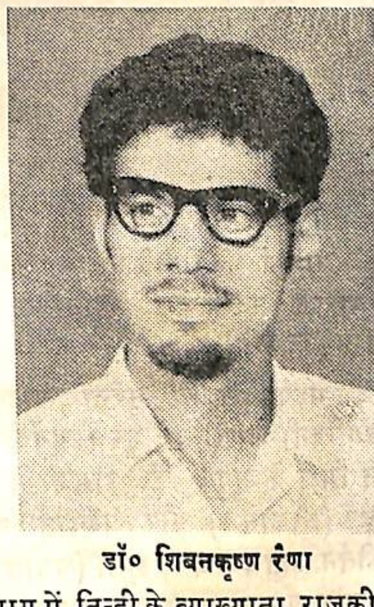
विभिन्न भाषाओं के सद्ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण प्रकाशित करने की योजना में, गत १९७५ ई० में कश्मीरी भाषा का श्री प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत 'रामावतार चरित' प्रकाशित हुआ था। पुस्तक के मुद्रणकाल में ही, उसके अनुवादक और लिप्यन्तरणकार डॉ० शिबनकृष्ण रैणा ने कश्मीर की आदि कवयित्री, परमहंस देवी

लल्लेश्वरी के वाखों (वाक्यों), और उनके प्रति कश्मीर के हिन्दू-मुसलमान सब का सम्मान, इस पर जब-तब पत्रों में चर्चा की थी।

सुतरां किसी भाषा की एक पुस्तक का प्रकाशन समाप्त होते ही उस भाषा की दूसरी पुस्तक का सानुवाद लिप्यन्तरण का शुभारंभ कर देने के हमारे कार्यक्रम के अनुसार 'लल् द्यद' को हाथ में लेने की उत्कण्ठा हुई। डॉ० रैणा ने भी बड़ी तत्परता से लल् के १७९ वाखों का संग्रह संकलित कर उनका सानुवाद लिप्यन्तरण ट्रस्ट को भेज दिया। 'द्यद' कश्मीरी भाषा में दादी का ही रूपान्तर है। दादी आदरणीय वृद्धा के लिए भी प्रयुक्त होता है। 'लल् द्यद' पुस्तक का कलेवर जितना सामान्य है, उसके एक-एक 'वाख' का भाव उतना ही गहन और आत्मा को उद्बुद्ध करनेवाला है। उसका परिचय, 'लल् द्यद—जीवन और कृतित्व' में विद्वान् अनुवादक ने विस्तार से प्रस्तुत किया है।

अनुवादक एवं लिप्यंतरणकार—

कश्मीरी भाषा की लोकप्रिय रामायण 'रामावतारचरित' एवं प्रस्तुत पुस्तक 'लल् द्यद' के सानुवाद नागरी-लिप्यन्तरणकार का पुष्कल परिचय इन पंक्तियों का अभीष्ट है। डॉ० शिबनकृष्ण रैणा का जन्म श्रीनगर कश्मीर में, भारत की आज़ादी की आख़िरी लड़ाई के कीर्त्तिमान् सन् १९४२ में २२ अप्रैल को हुआ। इस अल्पकाल में ही साहित्य-साधना की उल्लेखनीय परिधि तक वे पहुँचे। कश्मीरी विश्वविद्यालय से १९६२ ई० में एम० ए० (हिन्दी) में प्रथम स्थान प्राप्त कर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से 'कश्मीरी तथा हिन्दी कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोधग्रंथ लिखकर उन्होंने डॉक्टरेट प्राप्त की। उपरांत, कश्मीरी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी



डॉ० शिबनकृष्ण रैणा

विभाग में अध्यापक, राजस्थान शिक्षा विभाग में हिन्दी के व्याख्याता, राजकीय कालेज, नाथद्वारा में हिन्दी-विभागाध्यक्ष, नार्थ रीजनल लैंग्वेज सेन्टर, पटियाला में कश्मीरी भाषा के व्याख्याता, और अब इस समय राजस्थान (जयपुर) में पुनः अपने पूर्व पद पर आसीन हैं। कश्मीरी भाषा, साहित्य, जीवन व

संस्कृति पर अनेक निबन्धों तथा कई पुस्तकों के रचनात्मक कार्य का श्रेय उनको प्राप्त है। भाषा-जगत् को इस तरुण साधनाशील व्यक्तित्व से बड़ी आशाएँ हैं। भुवन वाणी ट्रस्ट उनके योगदान के लिए कृतज्ञ है।

संस्कृत अनुवाद—

'लल् द्यद' के वाक्यों के संस्कृत पद्यानुवाद के पीछे भी एक तथ्य है। १७९ पदों के इस संग्रह में लगभग ५० पदों का श्री राजानक भास्कर नामक एक प्राचीन विद्वान् द्वारा विरचित अति ललित संस्कृत पद्यानुवाद किसी समय प्रकाशित हुआ था। अब वह अप्राप्य है। लल्लेश्वरी-वाक्यों के साथ इन पदों को भी देने की इच्छा हुई, ताकि स्व० राजानक भास्कर की रचना का लोप न हो। किन्तु इस विचार के साथ ही यह समस्या उत्पन्न हुई कि कुछ पदों मात्र का संस्कृत श्लोकानुवाद देकर शेष पदों को कैसे विवस्त्र रखा जाय!



आचार्य श्री रामजी शास्त्री

सत्कार्य में भगवान् सदैव दाहिने रहते हैं। सुप्रसिद्ध रामायणी विद्वान् साहित्याचार्य श्री रामजी शास्त्री ने शेष पद्यों का संस्कृत छन्दों में अनुवाद करके भुवन वाणी ट्रस्ट को अनुग्रहीत किया। लोकप्रसिद्ध आचार्य जी, हमारी विद्वत्-परिषद् के वरिष्ठ सदस्य हैं। माननीय शास्त्री जी का सुलभ संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

मध्यप्रदेश के मुरैना मण्डल, ग्राम देवगढ़ में कौशिक गोत्रीय, माध्यन्दिनी शाखान्तर शुक्लयजुर्वेदीय सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में पं० रामरत्न मिश्र के सुपुत्र पं० रामजी ने जन्म लिया। ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम चूरू (बीकानेर) और पश्चात् श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज के संकीर्तन ब्रह्मचर्याश्रम, झूसी (प्रयाग) में अध्यापन एवं निर्वाण वेद विद्यालय, दारागंज प्रयाग में अध्ययन कर १९५० ई० में शास्त्री जी ने लखनऊ आकर निवास किया। व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। नव्य व्याकरण और दर्शनशास्त्र की भी परीक्षाएँ पास कीं। रामचरितमानस-गान, प्रवचन और रामायण, गीता, भागवत आदि के

माध्यम से धार्मिकता-प्रचार में जीवन-रत। आपकी लिखी एवं प्रकाशित पुस्तकों में 'मानस की मणियाँ' ने लोकप्रसिद्धि प्राप्त की है। वैष्णव दीक्षा में दीक्षित, रामोपासक, आजीवन ब्रह्मचारी, 'विद्या ददाति विनयं' को चरितार्थ करनेवाले इन सदाशय विद्वान् का सहयोग पाकर भुवन वाणी ट्रस्ट कृतकृत्य है।

कश्मीरी भाषा—

भारतीय भाषा, सभ्यता और संस्कृति पर शोध सम्बन्धी लेखन के समय, पाश्चात्य विद्वानों की पुस्तकों और शोधों का सहारा लेना, उनके उद्धरण देकर मत की पुष्टि करना, भारतीय विद्वानों के एक वर्ग में यह गौरव की बात समझी जाती है। पाणिनि का कश्मीर प्रदेश, विद्वानों, ब्राह्मणों और संस्कृत का, सिन्धु से भी अधिक प्राचीन केन्द्र माना जाता है। किन्तु यह पाश्चात्यवादी भारतीय विद्वान् कश्मीरी भाषा को संस्कृत-जन्य न कह कर दरद और पिशाच की पुत्री घोषित करता है।

अधिक लिखने का स्थान नहीं है, और इस विषय में मेरा अधिक अधिकार भी नहीं है। फिर भी सहज बुद्धि से संक्षेप में कुछ लिखना अनुचित न होगा। दरद और पिशाच आदि जातियों का स्थल कराकोरम और मध्य एशिया के ही अर्त-पर्त में माना जाता है। क्षेत्रीय जलवायु और आस-पड़ोस के सम्पर्क से प्रभावित होकर सभी भाषाएँ, अपनी जननी से कुछ पृथक् तो हो ही जाती हैं, किन्तु वे कुल में भिन्न नहीं मानी जातीं। "दरद और पिशाच भाषाओं को प्राकृत से मूलतः भिन्न मानना वैसा ही है जैसे भोजपुरी को हिन्दी से पृथक् मानना। दरद-पिशाच भी देश-काल-पात्र के प्रभाव से संस्कृत से अथवा प्राकृत से वैसे ही बदलीं जैसे सिन्धी, राजस्थानी आदि।

फिर सामान्य तोड़-मरोड़ भी एक शब्द को इतना भ्रमोत्पादक बना देता है कि उसके जनक मूल शब्द की ओर ध्यान ही नहीं जाता। उदाहरण के लिए कश्मीरी भाषा में 'कूद्‌गश् ?' का अर्थ है 'कहाँ जाते हो ?' यह कूद्‌गश् सुनने में नितान्त अभारतीय प्रतीत होता है। किन्तु यदि इसके बराबर हम 'कुत्र गच्छसि ?' रख दें, तो संस्कृत के क्षेत्रीय रूपान्तर का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। पाठक 'लल् द्यद' के पदों को ध्यान से पढ़ते समय हिन्दी अनुवाद को भी देखते जायँ। हम देखेंगे कि नितान्त अपरिचित और विदेशी प्रतीत होनेवाले शब्द कितना संस्कृत से ओतप्रोत हैं।

भूमिका—

डॉ० बनारसी दास चतुर्वेदी जी ने इस परिश्रम पर भूमिका लिखने की कृपा की है। उनका आशीर्वाद और शुभकामनाओं का मुझ पर और ट्रस्ट पर स्नेहमय भार है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है। उत्तरोत्तर आशीर्वाद रूपी पूँजी मैं उनसे समेटना चाहता हूँ।

आभार-प्रदर्शन—

ट्रस्ट के भाषाई सेतुकरण की योजना को, उदार सदाशयों, विद्वानों, एवं उत्तरप्रदेश शासन से प्राप्त सहायता से सहारा मिलता रहा है। अन्य भाषाई ग्रन्थों के साथ, कश्मीरी 'लल् द्यद' भी अपनी सहज गति से प्रकाशित होता। सौभाग्य से केन्द्रीय उपशिक्षा मंत्री माननीय श्री डी० पी० यादव, भारत सरकार के राष्ट्रभाषा सलाहकार बहुभाषा-मर्मज्ञ श्री रमाप्रसन्न नायक और शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय के शिक्षानिदेशक श्री सनत्कुमार चतुर्वेदी जी की अनुकम्पा हुई जिसके फल-स्वरूप पुस्तक परिपूर्णता की ओर विशेष गति से अग्रसर होकर राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत हो सकी है। हम इन महानुभाओं के अतिशय अनुग्रहीत हैं।

हम विश्वास के साथ निवेदन करते हैं कि भुवन वाणी ट्रस्ट की भाषाई सेतुकरण की विशाल और अद्वितीय योजना उत्तरोत्तर फलवती होकर राष्ट्रीय एकीकरण की भावना को पुष्ट करती रहेगी।

लखनऊ
२५ मार्च, १९७७

नन्दकुमार अवस्थी
मुख्यन्यासी सभापति, भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ–३

प्राक्कथन

कश्मीर की बहुचर्चित व आदिकवयित्री परमहंस लल द्यद के वाखों (पदों) का सानुवाद लिप्यंतरण प्रस्तुत है। लल द्यद के उपलब्ध लगभग सभी वाखों को संकलित कर देवनागरी लिपि में सानुवाद लिप्यंतरित करने का यह प्रथम मौलिक व वैज्ञानिक प्रयास है।

यों लल द्यद के वाखों का संकलन व अनुवाद कई विद्वानों ने किया है जिनमें उल्लेखनीय हैं सर्वश्री ग्रियर्सन, राजानक भास्कराचार्य, सर्वानन्द चिरागी, जियालाल कौल जलाली, जे० एल० कौल व नन्दलाल कौल तालिब, गोपीनाथ रैना, शंभुनाथ भट्ट हलीम आदि। (इन संकलनकर्ताओं के कार्य का परिचय इसी ग्रन्थ में अन्यत्र 'संत कवयित्री लल द्यद : जीवन और कृतित्व' के अन्तर्गत दिया गया है।) १७९ लल-वाखों को एक ही संकलन के अन्तर्गत हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करने का यह मेरा प्रथम प्रयास है।

कश्मीरी रामायण 'रामावतारचरित' का सानुवाद लिप्यंतरण संपन्न करने के बाद भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ के अनुरोध पर मैंने लल-वाखों के संकलन व सानुवाद लिप्यंतरण का काम १९७३ ई० में प्रारम्भ किया। ट्रस्ट के अनुरोध को अनुरोध नहीं, अपितु अपना धर्म मानकर मैं जब काम में जुट गया तो मुझे लगा कि मैं धर्म-संकट में पड़ गया हूँ। लल-वाखों का संकलन-संचयन करने के बाद (जिसमें मुझे लगभग एक वर्ष लगा) जब मैं उनका अनुवाद करने बैठा तो मेरी वाणी जाने क्यों लड़खड़ाने लगी, लेखनी जाने क्यों काँपने लगी! धर्म, दर्शन, ज्ञान और भक्ति की पेचीदगियों से संयुक्त इन वाखों का एक-एक शब्द, एक-एक चरण और एक-एक वाक्य मुझे अपने आप में एक-एक शास्त्र लगा। ऊपर से इन वाखों की भाषा आज की कश्मीरी से तनिक भिन्न होने के कारण मेरा रहा-सहा उत्साह भी भंग हो गया। मैंने निर्णय लिया कि इन वाखों का अनुवाद करना मेरे बस की बात नहीं।

इधर, काम के प्रति मैं उदासीन हो चला और उधर दैव को कुछ और ही मंजूर था। सितम्बर ७५ में नाथद्वारा, राजस्थान से मैं ड्यपुटेशन पर उत्तर क्षेत्रीय भाषा केन्द्र, पटियाला में कश्मीरी के व्याख्याता पद पर प्रतिष्ठित हुआ। केन्द्र में उपलब्ध कश्मीरी पुस्तकालय की सुविधा, कुछेक कश्मीरी ज्ञाताओं के सान्निध्य आदि ने मेरे कर्मोत्साह को पुनः जाग्रत किया। इसी बीच ट्रस्ट के मुख्य-न्यासी श्रीमान अवस्थी साहब का स्मरण-पत्र प्राप्त हुआ कि मैं लल द्यद का काम अब जल्दी ही समाप्त कर डालूँ क्योंकि ट्रस्ट की आगामी योजना में 'लल-वाखों' के प्रकाशन की घोषणा कर दी गई है। स्मरणपत्र मेरे लिए संजीवनी का काम कर गया और मुझे अपने कर्तव्य-पथ का स्मरण हो आया। उपरान्त, समस्त

चित्तवृत्तियों को बटोरकर मैं काम में लग गया। कुछ इष्टबल और कुछ गुरु-कृपा (ट्रस्ट के मुख्यन्यासी अवस्थी साहब भी उनमें शामिल हैं) कि काम धीरे-धीरे ठिकाने लगता गया। एक-एक वाख का अनुवाद पूरा करने में मैं इतना खो गया कि मुझे खबर ही न रही कि कब सबके सब वाखों का अनुवाद पूरा हो चुका। पटियाला में मेरे मकान-मालिक श्री महेन्द्रसिंह जी बजाज दो विषयों पंजाबी और उर्दू में एम० ए० हैं। मेरा काम देखकर वे काफ़ी प्रभावित हुए। एक सच्चे-हितैषी की तरह वे मेरा उत्साह बढ़ाते रहे, इसके लिए मैं सरदार साहब का हृदय से आभारी हूँ।

वाखों का अनुवाद करते समय मैंने इस बात का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है कि प्रत्येक वाख का सही और शुद्ध अनुवाद सामने आ जाए। इसके लिए मैंने कई संदर्भ-ग्रन्थों व विद्वानों से सहायता ली है। (उन सबका मैं आभारी हूँ) फिर भी हो सकता है कि कहीं पर कोई त्रुटि रह गई हो, उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

मूल वाखों को देवनागरी में लिप्यंतरित करने के लिए भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ द्वारा निर्धारित 'कश्मीरी-देवनागरी वर्णमाला' को आधार बनाया गया है। इस वर्णमाला का परिचय पृष्ठ २३-२४ पर दिया गया है।

उत्तर क्षेत्रीय भाषा-केन्द्र, पटियाला के तेलुगुभाषी कश्मीरी प्रशिक्षणार्थी श्री दाऊद अली मंजू को भी धन्यवाद देना चाहूँगा। प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलित ललवाख उन्हीं की रुचि के अनुसार मैंने क्रमबद्ध किए हैं। प्रारम्भ में मैंने इन वाखों को अकारादि क्रम से जमाया था। किन्तु बाद में पाया कि बहुत सारे वाख कथ्य की दृष्टि से एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। अतः उन्हें अकारादि क्रम से रखना संभव न था।

मैं उत्तर क्षेत्रीय भाषा-केन्द्र, पटियाला के प्राचार्य श्री डा० ओमकार एन० कौल का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय-समय पर आवश्यक निर्देश और सूचनाएँ देकर मेरे परिश्रम को सार्थक बनाने में मेरी आशातीत सहायता की।

बन्धुवर श्री पृथ्वीनाथ साइल का भी आभारी हूँ जो नियमित पत्राचार द्वारा कश्मीर से मुझे आवश्यक सामग्री और सूचनाएं भिजवाते रहे। भाई साइल ने इसी प्रकार 'रामावतार चरित' को तैयार करते वक्त भी मेरी काफ़ी सहायता की थी। मैं इन लगनशील व सेवाभावी महानुभाव की चिरायु, सुख-समृद्धि व उत्तम स्वास्थ्य की कामना करता हूँ। प्रियवर भूषणलाल जाडू व मोहनकृष्ण रैणा भी धन्यवाद के पात्र हैं। दोनों ने लल-वाखों के संकलन में मेरी बहुत सहायता की। भाषा-जगत् मेरे इस प्रयास का स्वागत करेगा, ऐसा विश्वास है।

डॉ० शिबनकृष्ण रैणा

लल द्यद : जीवन और कृतित्व

(डॉ० शिबनकृष्ण रैणा, एम० ए०, पीएच्० डी०)

लल द्यद को कश्मीरी जनता ललेश्वरी, ललयोगेश्वरी, लला, लल, ललारिफ़ा आदि नामों से जानती है।[1] इस कवयित्री का जन्मकाल विद्वानों के बीच विवाद का विषय बना हुआ है। डा० ग्रियर्सन तथा आर० सी० टेम्पल ने लल द्यद की जन्मतिथि न देकर उसकी जन्मशती का उल्लेख किया है। उनके अनुसार कवयित्री का आविर्भाव १४वीं शताब्दी में हुआ था तथा वह प्रसिद्ध सूफ़ी संत सय्यद अली हमदानी के समकालीन थी।[2] डा० जी० एम० सूफ़ी तथा प्रेमनाथ बज़ाज़ लल द्यद का जन्म सन् १३३५ ई० में मानते हैं।[3] श्री जियालाल कौल के मतानुसार लल द्यद का जन्म १४वीं शती के मध्य में सुल्तान अलाउद्दीन (१३४७ ई०) के समय हुआ था।[4] श्री जियालाल कौल जलाली लल द्यद का जन्म १४वीं शती के दूसरे दशक में भाद्रपद की पूर्णिमा को मानते हैं। "वाकयाते-कश्मीर" में लल द्यद का जन्मकाल ७४८ हिजरी तदनुसार १३४८ दिया गया है। कश्मीर के सुप्रसिद्ध इतिहासकार हसन-खूयामी ने तारीख-ए-कश्मीर में लल द्यद का जन्म वर्ष ७३५ हिजरी तदनुसार १३३५ ई० दिया है।[5] विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न जन्म-तिथियों का विश्लेषण करने पर लल द्यद का जन्मकाल १३३५ ई० अधिक उपयुक्त ठहरता है।[6]

---

१. लल द्यद का जन्म-नाम कुछ और रहा होगा। 'लल' कश्मीरी में तोंद को कहते हैं तथा 'द्यद' किसी भी आदरणीय प्रौढ़ा के लिए प्रयुक्त होनेवाला आदर-सूचक शब्द है। कहते हैं कि लल द्यद प्राय: अर्धनग्नावस्था में घूमती रहती थी और उसकी तोंद इतनी विकसित थी कि उसके गुप्तांग उस तोंद से ढके रहते थे। पं० गोपीनाथ रैना ने अपनी पुस्तक "ललवाक्य" में लल द्यद का जन्म-नाम पद्मावती बताया है।

२ 'लल वाक्यानि' १९२०, पृ० ३ तथा "द वर्ड आफ लला प्राफ़ेट्स" १९२९, पृ०—१

३ 'कशीर' प्रथम भाग, पृ० ३८३ तथा "द डाटर्स आफ़ वितस्ता"

४ "स्टडीज इन कश्मीरी" पृष्ठ २९

५ "काशिर अद्बुच तारीख" अवतार कृष्ण रहबर, पृ० १५०-१५१

६ कहा जाता है कि लल द्यद ने अपने जीवनकाल में तत्कालीन युवराज शहाबुद्दीन, प्रसिद्ध मुसलमान सन्त सैयद जलालुद्दीन बुख़ारी, सैयद हुसैन समनानी, सैयद अली हमदानी आदि से भेंट की थी। ये घटनायें क्रमश: ७४८ हि०, ७७३ हि०, और ७८१ हि० की हैं। स्पष्ट है कि लल द्यद का इन हिजरी वर्षों के पूर्व न केवल जन्म हुआ था अपितु वह पूर्णतया सयानी भी हो चुकी थी।

लल द्यद की मरण-तिथि जन्म-तिथि के समान अनिश्चित है। केवल इतना कहा जाता है कि जब लल द्यद ने प्राण त्यागे तो उस समय उसकी देह कुन्दन के समान दमक उठी। यह घटना इस्लामाबाद के निकट विजबिहारा में हुई बतायी जाती है।[1] लल द्यद का मृत शरीर बाद में किधर गया, उसे कहाँ जलाया गया आदि, इस सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। किंबदन्ती है कि प्रसिद्ध सन्त-कवि शेख नूरुद्दीन वली ने जिसका जन्म १३७६ ईसवी में हुआ, लल द्यद के फटकारने पर अपनी माँ के स्तनों से दुग्ध-पान किया था। इससे लल द्यद का कम से कम १३७६ ई० तक जीवित रहना सिद्ध होता है।

लल द्यद का जन्म पांपोर के निकट सिमपुरा गाँव में एक ब्राह्मण किसान के घर हुआ था। यह गाँव श्रीनगर से लगभग ९ मील की दूरी पर स्थित है। तत्कालीन प्रथानुसार लल द्यद का विवाह उसकी बाल्यावस्था में ही पांपोर ग्राम के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण घराने में हुआ। उसके पति का नाम सोनपंडित बताया जाता है।[2] बाल्यकाल से ही इस आदि कवयित्री का मन सांसारिक वन्धनों के प्रति विद्रोह करता रहा जिसकी चरम-परिणति बाद में भाव-प्रवण दार्शनिक "वाख-साहित्य" के रूप में हुई।[3] लल द्यद को प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा अपने कुल-गुरु श्री सिद्धमोल से प्राप्त हुई। सिद्धमोल ने उसे धर्म, दर्शन, ज्ञान और योग सम्बन्धी विभिन्न ज्ञातव्य रहस्यों से अवगत कराया तथा गुरुपद का अपूर्व गौरव प्राप्त कर लिया। अपनी पत्नी में बढ़ती हुई विरक्ति को देखकर एक बार सोनपंडित ने सिद्धमोल से प्रार्थना की कि वे लल द्यद को ऐसी उचित शिक्षा दें जिससे वह सांसारिकता में रुचि लेने लगे। कहते हैं कि सिद्धमोल स्वयं लल द्यद के घर गये। उस समय सोनपण्डित भी वहाँ पर मौजूद थे। इससे पूर्व कि गुरुजी लल द्यद को सांसारिकता का पाठ पढ़ाते, एक गम्भीर चर्चा छिड़ गई। चर्चा का विषय था— १. सभी प्रकाशों में कौन-सा प्रकाश श्रेष्ठ है, २. सभी तीर्थों में कौन-सा तीर्थ श्रेष्ठ है, ३. सभी परिजनों में कौन-सा परिजन श्रेष्ठ है, और ४. सभी सुखद वस्तुओं में कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है ?

---

१ "कश्मीरी जबान और शायरी," आजाद पृ० १२५, भाग २।

२ "ललद्यद और उनकी दार्शनिक विचारधारा" डा० कृष्णा शर्मा, "मार्गदर्शक" (कश्मीर-विशेषांक) झाँसी पृ० २१९।

३ ललद्यद की तबियत में बचपन से ही कुछ ऐसी बातें थीं जिनसे जाहिर होता है कि इसके दिल व दिमाग़ पर प्रारम्भ से ही ग़ैर मामूली प्रभाव था। वह प्रायः अकेली बैठती और गहरे सोच में डूबी रहती। दुनिया की कोई दिलचस्पी उसके लिए आकर्षण का केन्द्र न बन सकी। वह प्रायः इस असाधारण स्वभाव के कारण अपनी सहेलियों के बीच हास-परिहास का विषय बन जाती। "कश्मीरी ज़बान और शायरी," पृष्ठ ११३ भाग २।

सर्वप्रथम सोनपण्डित ने अपनी मान्यता यों व्यक्त की—सूर्य-प्रकाश से बढ़कर कोई प्रकाश नहीं है, गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है, भाई के बराबर कोई परिजन नहीं है, तथा पत्नी के समान और कोई सुखद वस्तु नहीं है।[1] गुरु सिद्धमोल का कहना था—नेत्र-प्रकाश के समान और कोई प्रकाश नहीं है, घुटनों[2] के समान और कोई तीर्थ नहीं है, जेब के समान और कोई परिजन नहीं है, तथा शारीरिक स्वस्थता के समान और कोई सुखद वस्तु नहीं है।[3] योगिनी लल द्यद ने अपने विचार यों रखे—मैं अर्थात् आत्मज्ञान के समान कोई प्रकाश नहीं है, जिज्ञासा के बराबर कोई तीर्थ नहीं है, भगवान् के समान और कोई परिजन नहीं है, तथा ईश्वर-भय के समान कोई सुखद वस्तु नहीं है।[4] लल द्यद का यह सटीक उत्तर सुनकर दोनों सोनपण्डित तथा सिद्धमोल अवाक् रह गये।

विवाह के पश्चात् ससुराल में लल द्यद को अपनी सास की कटु आलोचनाओं एवं यन्त्रणाओं का शिकार होना पड़ा। किन्तु वह उदार-शीला यह सब पूर्ण धैर्य के साथ झेलती रही। एक दिन लल द्यद पानी भरने घाट पर गई हुई थी। मां ने पुत्र को उकसाया—देख तो यह चुड़ैल घाट पर इतनी देर से क्या कर रही है। सोनपण्डित लाठी लेकर घाट पर गये। सामने से लल द्यद सिर पर पानी का घड़ा लिए आ रही थी। सोनपण्डित ने जोर से लाठी घड़े पर चलाई। घड़ा फूट कर खण्डित हो गया, किन्तु कहते हैं कि पानी ज्यों का त्यों उस देवी के सिर पर टिका रहा। घर पहुँचकर लल द्यद ने इस पानी से बर्तन भरे तथा जो पानी बचा रहा उस पानी को खिड़की से बाहर फेंक दिया। थोड़े दिनों के बाद उस स्थान पर एक तालाब बन गया जो अभी भी "लल त्राग" (तडाग) के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार एक दिन लल द्यद के ससुर ने सहभोज दिया। लल द्यद अपनी दैनिक चर्या के अनुसार घाट पर पानी भरने के लिए गई। वहाँ बातों ही बातों में सहेलियों ने उसे छेड़ा—आज तो तेरे घर में तरह-तरह के पकवान बने हैं, आज तो पेट भर तुझे स्वादिष्ट पदार्थ खाने को मिलेंगे। लल द्यद ने दीनतापूर्वक उत्तर दिया—

---

१ सिरियस ह्यु नु प्रकाश कुने, गंगि ह्यु न तिरुथ कांह।
बा॑यिस ह्यु नु बांदव कुने, रनि ह्यु न सोख कांह॥

२ घुटुनों से तात्पर्य स्वावलम्बन से है।

३ अ॑छन ह्यु नु प्रकाश कुने, कोठ्यन ह्यु नु तिरुथ काँह।
चंन्द्रस ह्यु नु बांदव कुने, रनि ह्य नु सोख काँह॥

४ मेयस ह्यु नु प्रकाश कुने, पेयस ह्यु नु तिरुथ कांह।
दयस ह्यु नु बान्दव कुने, बेयस ह्यु नु सोख कांह॥

"घर में चाहे बकरा कटे या भेड़, मेरे भाग्य में तो पत्थर के टुकड़े ही लिखे हैं।"[१] कहते हैं कि लल द्यद की निर्दयी सास उसे कभी भरपेट भोजन नहीं देती थी। दिखावे के लिए थाली में एक पत्थर रखकर उसके ऊपर भात का लेप करती, नौकरों की तरह काम लेती आदि। इस समय तक ललद्यद की अन्तर्दृष्टि दैहिक चेष्टाओं की संकीर्ण परिसीमाओं को लाँघकर असीम में फैल चुकी थी। वह वन-वन अन्तर्ज्ञान का रहस्य अन्वेषित करने के लिये डोलने लगी। यहाँ तक कि उसने वस्त्रों की भी उपेक्षा कर दी। उसकी आचार-मर्यादा कृत्रिम व्यवहारों से बहुत ऊपर उठकर समष्टि में गोते लगाने लगी। नाचती, गाती तथा आनन्दमग्न होकर विवस्त्र घूमती रहती। पुरुष उन्हीं को मानती जो भगवान से डरते हों, और ऐसे पुरुष उसके अनुसार इस संसार में बहुत कम थे। शेष के सामने नग्नावस्था में फिर घूमने-फिरने में शर्म कैसी? एक दिन लल द्यद को प्रसिद्ध सूफ़ी संत मीर सैयद हमदानी सामने से आते दिखाई पड़े। उसने एकदम अपनी देह को आवृत्त करने का प्रयास किया। निकट पहुँचकर संत हमदानी ने पूँछा—हे देवि, तुमने अपनी देह की यह क्या हालत बना रखी है? तुम्हें नहीं मालूम कि तुम नंगी हो। लल द्यद ने सकुचाते हुए उत्तर दिया—हे ख़ुदा-दोस्त, अब तक मेरे पास से केवल औरतें गुज़रती रहीं, उनमें से कोई पुरुष अथवा आँखवाला नहीं था। आप मुझे मर्द तथा तत्त्वज्ञानी दीख पड़े, इसलिए आपसे अपनी देह छिपा रही हूँ। एक और घटना इस प्रकार है। कहते हैं कि जब संत हमदानी को दूर से आते देखा तो वह चिल्लाती हुई दौड़ पड़ी कि आज मुझे असली पुरुष के दर्शन हो रहे हैं। वह एक बनिये के पास गई और तन ढकने के लिए वस्त्र मांगे। बनिये ने कहा कि आज तक तुम्हें कपड़े की आवश्यकता नहीं पड़ी तो इस समय क्यों माँग रही हो। लल द्यद ने उत्तर दिया—वे जो महापुरुष सामने से आ रहे हैं, मुझे पहचानते हैं और मैं उन्हें। इतने में सन्त हमदानी समीप पहुँच गये। पास ही एक नानबाई का तन्दूर जल रहा था। लल द्यद तुरंत उसमें कूद पड़ी। मुस्लिम सन्त पूछ-ताछ करते वहाँ पहुँच गये और उन्होंने आवाज़ दी—ऐ लल, बाहर आओ, देखो तो कौन खड़ा है। उसी क्षण लल द्यद सुन्दर दिव्य वस्त्र धारण किये प्रत्यक्ष हो गई।[२]

लल द्यद के कोई सन्तान न हुई थी। प्रकृति ने इस बन्धन से

---

१ इस घटना का आधार लेकर कश्मीर में एक कहावत प्रचलित हो गई है—"ललि नीलवठ चुलि नु ज़ांह" अर्थात् लल के भाग्य से पत्थर कहाँ टलेंगे।

२ इस घटना पर भी एक कहावत प्रचलित है—"आये वानिस तु गयि कांदरस" अर्थात् आयी तो थी बनिये के पास किन्तु गई नानबाई के पास।

उसे मुक्त रखा था। कवयित्री ने स्वयं एक स्थान पर कहा है—"न मैं प्रसूता बनी और न मैंने प्रसूता का आहार ही किया।"[1]

विपरीत पारिवारिक परिस्थितियों ने लल द्यद को एक नई जीवन-दृष्टि प्रदान की। उसने अपनी समस्त अभीष्ट पूर्तियों को व्यापक रूप दे दिया तथा अपनी आत्मा के चिर अन्वेषित सत्य को ज्ञान एवं भक्ति की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियों में साकार कर दिया। ये स्फुट किन्तु सरस अभिव्यक्तियाँ "वाख" कहलाती हैं। कबीर की भाँति ललद्यद ने भी "मसि-काग़ज़" का प्रयोग कभी नहीं किया। उसके वाख गेय हैं जो प्रारम्भ में मौखिक परम्परा में ही प्रचलित रहे तथा उन्हें बाद में लिपिबद्ध किया गया। इस दिशा में सर्वप्रथम ग्रियर्सन महोदय का नाम उल्लेखनीय है।[2] उन्होंने महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम शास्त्री की सहायता से १०६ वाख एकत्रित किये तथा उन्हें "ललवाक्यानि" के अन्तर्गत सम्पादित किया। यह पुस्तक सन् १९२० में रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन से प्रकाशित हुई है। श्री आर० सी० टेम्पल की पुस्तक "द वर्ड आफ़ लला" में लल द्यद के वाक्यों का गम्भीर अध्ययन मिलता है। यह पुस्तक सन् १९२४ में विश्वविद्यालय प्रेस, कैम्ब्रिज में प्रकाशित हुई है। राजानक भास्कराचार्य का लल द्यद के ६० वाखों का संस्कृत रूपान्तरण भी मिलता है। लल द्यद के वाखों (वाक्यों) का संकलन व अनुवाद करने में जिन दूसरे विद्वानों ने उल्लेखनीय कार्य किया है, उनके नाम हैं—सर्वश्री सर्वानन्द चराग़ी, आनन्द कौल बामज़ई, रामजू कल्ला, जियालाल कौल जलाली, गोपीनाथ रैना, जियालाल कौल, आर० के० वांचू तथा नन्दलाल तालिब। श्री सर्वानन्द चराग़ी ने "कलाम-ए-ललारिफ़ा" के अन्तर्गत लल द्यद के १०० वाखों का हिन्दी में अनुवाद किया है। श्री आनन्द कौल बामज़ई ने ७५ तथा रामजू कल्ला ने "अमृतवाणी" में १४६ ललवाखों को प्रकाशित किया है।

---

१ "न प्यायस, न जायस, न ख़ेयम हंद तुने शोंठ"

२ सन् १९१४ में ग्रियर्सन ने लल वाक् एकत्रित कर उन्हें पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। इस कार्य के लिए उन्होंने उस समय के प्रसिद्ध कश्मीरी विद्वान पं० मुकुन्दराम शास्त्री का सहयोग लिया। मुकुन्दराम ने काफ़ी खोज की किन्तु ललवाक् सम्बन्धी कोई भी सामग्री उनको हाथ न लगी। एक बार वे बारामूला से ३० मील दूर "गुश" नाम के गाँव में पहुँचे। वहाँ पर उनकी भेंट धर्मदास नामक एक हिन्दू सन्त से हुई। इस सन्त को लल द्यद के अनेक वाख (वाक्) कण्ठस्थ थे। मुकुन्दराम ने इन वाकों का संग्रह कर उन्हें संस्कृत व हिन्दी रूपान्तर के [illegible] ग्रियर्सन महोदय को सौंप दिया। इन्हीं "वाकों" को बाद में ग्रियर्सन ने सन् १९२० में लन्दन से [illegible] करवाया।

पं० जियालाल कौल जलाली ने अपनी पुस्तिका "ललवाख" में ३८ वाखों का हिन्दी में अनुवाद किया है। जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित "ललद्यद" (१९६१) में लगभग १३५ वाख आकलित हैं। इस पुस्तक के सम्पादक श्री जियालाल कौल तथा श्री नन्दलाल तालिब हैं।

लल द्यद के "वाख" प्रायः छन्द-मुक्त हैं। चार-चार पादों के ये स्फुट 'वाख' लययुक्त हैं। इनमें कवयित्री ने जीवन दर्शन की गूढ़तम गुत्थियों को सहज-सरल रूप में गूँथ दिया है। लल द्यद के कृतित्व का परिचय पहली बार "तारीख-ए-कश्मीर" (१७३० ई०) में मिलता है। इसके पूर्व वह उपेक्षिता ही रही है। श्रीवर की "जैनराज तरंगिणी" तथा जोनराज की "जैनतरंगिणी" में भी उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वस्तुतः १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में लल द्यद के कृतित्व की ओर जनता का ध्यान गया और उसका विधिवत् महत्त्वांकन होने लगा।

लल द्यद के वाख-साहित्य का मूलाधार दर्शन है। उसका प्रत्येक वाख दार्शनिक चेतना का आगार है जिस पर प्रमुखतः शैव, वेदान्त, तथा सूफ़ी दर्शन की छाप स्पष्ट है। जिस समय लल द्यद का आविर्भाव हुआ उस समय कश्मीर में इस्लाम धर्म का एक विचार-पद्धति के रूप में आगमन हो चुका था। देश में घोर अशान्ति व धार्मिक अव्यवस्था व्याप्त थी। धर्मान्ध कट्टरपन्थी अपने-अपने धर्म-सम्प्रदायों का प्रचार प्रसार करने में दत्तचित्त थे। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विषमतायें भी जनता को आड़े हाथों ले रही थीं। ऐसे विकट क्षणों में लल द्यद ने जनता के समक्ष धर्म के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए जनवाणी में परम सत्य की सार्थकता को ऐसी व्यापक तथा सर्वसुलभ संघटिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया जिसमें न कोई दुराव था, न कोई आवरण, और न कोई विक्षेप। लल द्यद की यह सत्य-प्रतिष्ठा विशुद्धतः उसकी अन्तरानुभूति की देन है।

लल द्यद विश्वचेतना को आत्मचेतना में तिरोहित मानती है। सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि द्वारा उस परमचेतना का आभास होना सम्भव है। यह रहस्य उसे अपने गुरु से ज्ञात हुआ था:—

गोरन दोंपनम कुनुय वच़ुन,
न्यबर् दोंपनम अंदर अच़ुन,
सुय मे ललि गोम वाख त वच़ुन,
तवय ह्योतुम नंगय नच़ुन ॥

गुरु ने मुझे एक रहस्य की बात बताई—बाहर से मुख मोड़ और अपने अन्तर को खोज। बस, तभी से यह बात हृदय को छू गई और मैं विवस्त्र नाचने लगी।

लल द्यद उस सिद्धावस्था को पहुँच चुकी थी जहाँ स्व और पर की भावनायें लुप्त हो जाती हैं—जहाँ मान-अपमान, निन्दा-स्तुति आदि भावनायें मन की संकुचितता को लक्षित करती हैं। जहाँ पंचभौतिक काया मिथ्याभासों एवं क्षुद्रताओं से ऊपर उठकर विशुद्ध स्फुरणाओं का केन्द्रीभूत पुंज बन जाती है—

युस हो मालि हेंड्यम, गेल्यम मसखरु करुयम,
सुय हो मालि मनस खट्यम नु ज़ांह।
शिव पनुन येंलि अनुग्रह कर्यम,
लुकुहुन्द हेंडुन मे कर्यम क्याह॥

चाहे कोई मेरी अवहेलना करे या तिरस्कार, मैं कभी मन में उसका बुरा न मानूँगी। जब मेरे शिव का मुझ पर अनुग्रह है तो लोगों के भला-बुरा कहने से क्या होता है?

इस असार-संसार में व्याप्त विभिन्न विरोधाभासों को देखकर लल द्यद का अन्तर्मन विह्वल हो उठा और उसे स्वानुभूति का अनूठा प्रसाद मिल गया—

गाटुला अख़ वुछुम बोंछि सुत्य मरान,
पन ज़न हरान पोंहुन्य वाव लाह।
निश बोंद अख वुछुम वाज़स मारान,
तनु लल बु प्रारान छेंन्यम नु प्राह[१]॥

शंकर के अद्वैत का लल द्यद ने पूर्ण सहृदयता के साथ निरूपण किया है। सकल सृष्टि में जो गोचर है वह परमात्मा का ही व्यक्त रूप है। "मैं ही ब्रह्म हूँ", वह मेरे पास है—मुझसे अलग नहीं है। उसे ढूँढ़ने के लिए तनिक एकाग्रता, लगन तथा त्याग की आवश्यकता है। कुत्सित स्वार्थ, सीमित मनोवृत्ति आदि का विसर्जन भी अनिवार्य है—

लल बु द्रायस लोलरे,
छांडन रूज़ुस दोंह क्योंह राथ।
वुछुम पंडिता पननि गरे,
सुय में रोंटमस न्यछतुर तु साथ॥

[१] एक प्रबुद्ध को भूख से मरते देखा, [illegible]तझर सा जीर्ण-शीर्ण हुआ पड़ा।
एक निर्बुद्ध से [illegible] को [illegible] देखा, [illegible]ती से यह मन बाहर निकल पड़ा॥

मैं उस परम शक्ति को घर से ढूँढ़ते-ढूँढ़ते निकल पड़ी। उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते रात-दिन बीत गये। अन्त में देखा, वह मेरे ही घर में विद्यमान है। बस, तभी से मेरी परमात्म-साधना का उचित मुहूर्त निकल आया।

रंगस मंज ब्यॊन - ब्यॊन लगुन,
सारिय ज्ञाव्रख लख तु सॊख।
ज्ञख रिश त वार यॆलि मनुमंज गालख,
अदु डेशख शिव सुंद मॊख।

इस संसाररूपी रंगशाला में तुझे भिन्न-भिन्न प्रकार की आकृतियाँ देखने को मिलेंगी। वस्तुत: ये सभी एक हैं—उनके वास्तविक रूप को ढूंढ़। जब तू इसके लिए सुख-दु:ख उठायेगा तथा घृणा, वैर आदि को मन से गला देगा तब तुझे शिवमुख के दर्शन होंगे।

कुस मरि तु कस मारन,
मारि कुस तु मारन कस,
युस हरु - हरु त्राविथ गरु-गरु करि,
अदु सुय मरि तु मारन तस।।

कौन मारेगा और किसको मारा जायगा, कौन मारेगा और किसको मारेंगे। जो शिव-शिव कहना छोड़कर घर-घर कहने लगेगा बस वही मरेगा और उसी को मारेंगे।

गगन च़ु'य बूतल च़ुय,
च़ु'य द्यन पवन तु राथ,
अरुग चंदन पोश पोन्य च़ुय,
च़ुय छुख सकलय तु लागिज़ि क्याह।।

तू ही गगन है, तू ही भूतल, दिन, पवन व रात है। अर्घ्य, चन्दन, पुष्प, पानी आदि भी तू ही है। तू ही सब कुछ है, फिर हे भगवान तुझे क्या चढ़ाऊँ?

मंकरिस ज़न मल चॊलुम मनस,
अदु मॆ लंबुम ज़ंनिस ज़ान।
सुय यॆलि ड्यूठुम निशि पानस,
सोरुय सुय तु बु नो कांह।।

धुल गई जब मैल मन-दर्पण से तो उसे अपने में ही स्थित पाया।
तब सर्वत्र ही दिखने लगा वह, और व्यक्तित्व मेरा शून्य हो आया ॥

लल द्यद ने धर्म के नाम पर प्रचलित मिथ्याचारों, बाह्याडम्बरों तथा विक्षेपों का खुलकर खण्डन किया है। कबीर की भाँति उसने दोनों हिन्दुओं तथा मुसलमानों को खरी-खोटी सुनाई है। धर्म का वास्तविक अर्थ है मन की शुद्धता। वस्तुतः यही शुद्धता जीव को परमतत्व तक पहुँचा सकती है।

बुथ क्याह जान छुय वोंदु छुय कंन्य,
असलुच कथ जांह संनिय नो।
परान तु लेखान वुठ तु ओंगजि गजी,
अंदरिम दुय ज़ांह च्रंजिय नो॥

मुखाकृति अत्यन्त सुन्दर है किन्तु हृदय पत्थर-तुल्य है—उसमें तत्व की बात कभी समायी नहीं। पढ़-पढ़ व लिख-लिखकर तुम्हारे होंठ व तेरी उंगलियाँ घिस गईं मगर तेरे अन्तर का दुराव कभी दूर न हुआ।

अविचारी हा मालि छिय पोथ्यन परान,
यिथु तोतु परान राम पंजरस।
गीता परान हत्या लबान, ?
पंरुम गीता तु परान छस॥

अविचारी पोथियाँ ऐसे पढ़ते हैं जैसे तोता पिंजरे में राम-राम रटता है। ऐसे व्यक्ति गीता पढ़ते हैं तो केवल दिखावे के लिए। मैंने सचमुच गीता पढ़ी है तथा उसे पढ़ रही हूँ।

अटनुच सन दिथ थावान मटन,
लूब बोंछ बोलान ग्यानुच कथ।
फंट्य फंट्य नेरान तिम कति वटन,
तुक अय मालि छुख तु पोर गछ्र पथ॥

एक स्थान से माल छीनकर दूसरे स्थान पर रखते हैं, और ऊपर से ये लोभी ज्ञान की बातें करते हैं। ऐसे पाखण्डी भला क्या प्राप्त कर सकते हैं? हे मनुष्य! यदि तू बुद्धिमान है तो इस पाखण्ड को त्याग दे।

शिव छुय थलि थलि रोज़ान,
मो ज़ान ह्यौंद तु मुसलमान।
त्रुक अय छुख तु पान परज़ान,
सौय छय साहिबस सुत्य ज़ान ॥

शिव सर्वत्र व्याप्त है। अतः हे मनुष्य ! तू हिन्दू तथा मुसलमान में भेद न जान, यदि तू बुद्धिमान है तो अपने आपको पहचान, यही रहस्य की बात है।

लंज़ कासि शीत निवारि,
त्रन ज़लि करि आहार।
यि कंम्य वौपदीश कौरुय हा बटा,
अचेतन व्रटस चेतन कठ दिन आहार ॥

यह तेरी लज्जा को ढाँकता है, शीत से भी रक्षा करता है। स्वयं तृण-जल का आहार करता है। यह उपदेश तुझको किसने दिया जो तू अचेतन पत्थर पर चेतन बकरे को बलि चढ़ाता है।

लल द्यद ने भाग्य की अनिवार्यता को यत्र-तत्र स्वीकार किया है। भाग्य का लेख अमिट है, उसे कोई मिटा नहीं सकता—

हा मनुशि क्याजि छुस बुठान सेकि लूर,
अमी रंखि हा मालि पकि नु नाव।
ल्यूखुय यि नारान्य करमुनि रंखी,
ती मालि हैंकि नु फिरिथ ज़ांह ॥

हे मनुष्य ! तू क्यों रेत की रस्सी बनाता है, इससे तेरी जीवन-नैया पार नहीं लग सकती। नारायण ने जो तेरी भाग्य रेखा खींची है, वह कभी बदल नहीं सकती।

लल द्यद के साधना-पक्ष में योग को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यह योग कोरे बौद्धिक चिन्तन का प्रतिफलन नहीं है, उसमें प्रेम का माधुर्य विद्यमान है। योग की अनेक अन्तर्दशाएँ तथा कोटियाँ हैं। योगी को इनसे विधिवत् गुज़रना पड़ता है और तब उस अमर-तत्व की प्राप्ति होती है—

शौं वन च्रटिथ शशिकल वुज़ुम
प्रकृत वुज़ुम पवन सुत्य ।
लोलकि नारु सुत्य वांलिज वुज़ुम,
शंकर लोंबुम तमी सुत्य ।।

शरीर में स्थित षट्चक्रों मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा को वश में करके मैंने ब्रह्मरन्ध्र को जगाया तथा प्राणायाम द्वारा अपने अन्तर को वश में करके प्रेम की अग्नि से उसे कुन्दन बना दिया, तब कहीं शिव के दर्शन हुए ।

क्याह करु पांच्रन दंहन तु काहन
वुशुन यथ लेंजि कंरिथ यिम गय ।
सारिय समहन यथ रज़ि लमहन,
अदु क्याज़ि राविहे कहन गाव ।।

पंचभूत काया में वर्तमान पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा एक मन भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर हो रहे हैं । यदि ये सभी मिलकर एक ही दिशा की ओर प्रवृत्त हों तो निश्चय ही परमसत्य की प्राप्ति होगी । इस असार संसार में कोई भी वस्तु चिरस्थायी नहीं है । चिर-स्थायी तो केवल शिव हैं—

दमी ड्यांठुम नद गज़वनी
दमी ड्यूठुम सुम नत तार ।
दमी ड्यांठुम थंर फोंलवुनी
दमी ड्यूठुम गुल नतु खार ।।

अभी-अभी नदी को गर्जते देखा, अभी-अभी उसपर पुल बनते देखा । अभी-अभी फलोंसे लदी डाली देखी और अभी-अंभी उसपर न फूल देखे न कांटे ।

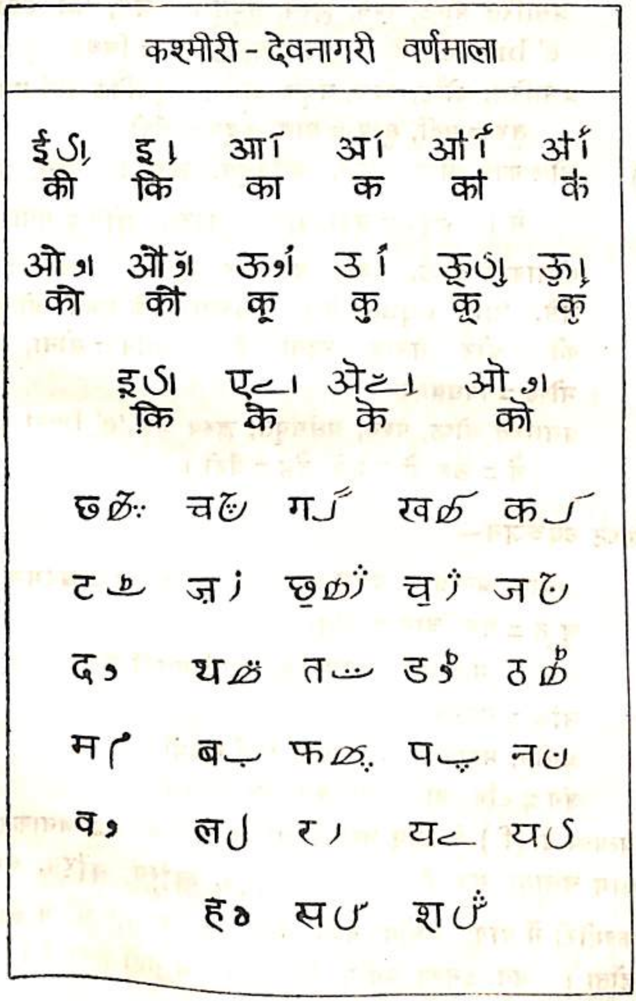
ललद्यद का कृतित्व सांस्कृतिक पुनर्जागरण, मानव-कल्याण तथा सामाजिक पुनरुत्थान की दार्शनिक अभिव्यक्ति है जिसमें सरसता, स्पष्टता एवं सजीवता एक साथ गुम्फित है । उसके वाकों में धर्मदर्शन सम्बन्धी तथ्यों की प्रधानता के साथ-साथ काव्यात्मक सौन्दर्य की गहनता भी विपुल मात्रा में दृष्टिगत होती है । अपनी भावनाओं को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए कवयित्री ने प्रमुखतया उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है । अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत

संयोजित कार्य-व्यापार साधारण जन-जीवन से लिये गये हैं, जिनमें सहजता के साथ-साथ पर्याप्त अभिव्यञ्जना शक्ति समाहित है। रस परिपाक की दृष्टि से सम्पूर्ण वाक्-साहित्य में प्रायः शान्त रस की प्रबलता है।

भाषागत दृष्टि से ललद्यद के वाख विशेष महत्व के हैं। लल द्यद के पूर्व कोई भी संरचना ऐसी नहीं मिलती जो कश्मीरी में लिखी गई हो। यद्यपि कुछ विद्वान् शितिकण्ठ की "महानय प्रकाश" को कश्मीरी की प्रथम कृति मानते हैं किन्तु उसकी भाषा कश्मीरी के उतनी निकट नहीं है जितनी लल द्यद के वाकों की है। भाषा-वैज्ञानिक-दृष्टि से इन वाकों का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। लल द्यद की भाषा मूलतः संस्कृत-निष्ठ है, जिस पर यत्र-तत्र फ़ारसी-अरबी शब्दों का प्रभाव भी मिलता है। संस्कृत के अनेक शब्द कवयित्री ने अपने मूल रूप में प्रयुक्त किये हैं, जैसे—प्रकाश, तीर्थ, अनुग्रह, कर्म, बान्धव, मूढ़, मनुष्य, नारायण, मन, शीत, तृण, उपदेश, अचेतन, आहार, शिव, हर, गगन, भूतल, पवन, फल, दीप, शम्भु, अर्घ्य, ज्ञान, राम, गीता, मूर्ख, पंडित, मान, संन्यास आदि। किन्हीं संस्कृत शब्दों का कश्मीरी-संस्करण करके प्रयोग किया गया है, जैसे—

समसार = संसार, दर्शुन = दर्शन, बोँद = बुद्धि, गोँपत = गुप्त, सोँख = सुख, मोँख = मुख, शिन्य = शून्य, लंज़ = लज्जा, रुख = रेखा, त्रेशना = तृष्णा आदि। अरबी फ़ारसी से लिये गये कुछ शब्द इस प्रकार हैं—साहिब, दिल, जिगर, मुश्क, गुल, खार, बाग, कलमा, शिकार आदि।

भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा प्रयुक्त
कश्मीरी वर्णमाला का देवनागरी रूपान्तर



कश्मीरी की विशिष्ट ध्वनियों, उनके उच्चारणों, उनके लिए निर्धारित मात्रा-चिह्नों, उनके संस्थानों आदि का सोदाहरण विवरण अगले पृष्ठ पर इस प्रकार है:—

विशिष्ट स्वर तथा मात्राएँ—

अ़ (ı) प्रसारित ओष्ठ, पश्च, ह्रस्व, अर्धसंवृत। जैसे, 'e' certainly में।
लऺर = मकान, गऺर = घड़ी, नऺर = बाँह

आ़ (ꣻ) प्रसारित ओष्ठ, पश्च, दीर्घ, अर्धसंवृत। जैसे, 'i' bird में या 'u' curd में। हाऻर = मैना, लाऻर = खीरा, माऻज = माँ।

उ़ (ु) प्रसारित ओष्ठ, पश्च, ह्रस्व, संवृत। जैसे, 'ai' certain में या 'e' broken में। गुथ = लहर, तर = चिथड़ा, बु = मैं

ऊ़ (ू) प्रसारित, ओष्ठ, पश्च, संवृत, दीर्घ। (तनिक दीर्घ-प्रयत्न के साथ)
तुर = सर्दी, सुत्य = साथ, कुद्य = कैदी

ओं (ॉ) गोलाकार ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत, ह्रस्व। जैसे, 'o' oclock में। नॉट = घड़ा, सॉन = गहरा, नॉन = नंगा।

ऒ (ॊ) गोलाकार ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत, ह्रस्व। अत्यल्प 'व' मिश्रित, जैसे, 'ua' equal में। (उच्चारण के समय ओष्ठों पर बाहर की ओर तनाव रहता है) सॊन = सोना, बॊन = नीचे, मॊण्ड = विधवा।

ऄ (ॆ) प्रसारित ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत, ह्रस्व जैसे 'e' best में।
शॆ = छह, मॆ = मुझे, बॆह = बैठो।

विशिष्ट व्यञ्जन—

च़ अघोष, अल्पप्राण, दंतमूलक, स्पर्श-संघर्षी चऺर = खटमल, चूठ = सेब, चास = खाँसी

छ़ अघोष, महाप्राण, दंतमूलीय, स्पर्श-संघर्षी छल = छल, लछ = धूल, लांछ = नपुंसक

ज़ अघोष, महाप्राण, दंतमूलीय, स्पर्श-संघर्षी
ज़ंग = टाँग, ज़ान = परिचय, रज़ = रस्सी

(क) अत्यल्प इ (ि) के लिए शब्द के अंतिम वर्ण को अर्द्ध बनाकर उसके साथ 'य' जोड़कर काम चलाया गया है। जैसे—पाऻर्य, खाऻस्य, वाऻर्य, आदि।

(ख) कश्मीरी में प्रायः सघोष वर्णों तथा—घ, झ, ढ,: ध, भ आदि का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता। अतः इनका प्रयोग लिप्यन्तरण में नहीं हुआ है। धन को दन, धार को दार, भगवान को बगवान आदि लिखा गया है।

आशा है कि हिन्दी के पाठकों को उपर्युक्त विभिन्न मात्रा-चिह्नों की मदद से कश्मीरी का सही पाठ करने में सफलता मिल जायेगी।

—डॉ० शिबनकृष्ण रैणा

ललद्यद

कश्मीर की आदि कवयित्री की काव्य-सलिला

नागरी लिपि में, (हिन्दी गद्य एवं संस्कृत पद्यानुवाद सहित)

लल बु द्रायस लोलरे,
छांडान लूसुम द्यन क्योंह राथ।
वुछुम पंडिथा पनुनि गरे,
सुय मे रोंटमस नेंछतुर तु साथ ॥ १ ॥

लल्लाहं निर्गता दूरम्
अन्वेष्टुं शंकरं विभुम्।
भ्रान्त्वा लब्धो मया स्वस्मिन्
देहे देवो गृहे स्थितः ॥ १ ॥*

मैं लल प्रेम से उस परमशक्ति को ढूँढने के लिए घर से निकल पड़ी। उसे ढूँढते-ढूँढते रात-दिन बीत गये। अंत में देखा वह पंडित (इष्ट) तो मेरे ही घर में विद्यमान् हैं। बस, तभी से मेरी अन्तर्साधना का उचित मुहूर्त्त निकल आया ॥ १ ॥

* संस्कृत भावानुवाद में * चिह्नित पद्य श्री राजानक भास्कराचार्य एवं शेष श्लोक श्री रामजी शास्त्री साहित्य-व्याकरणाचार्य (लखनऊ) द्वारा विरचित हैं।

गौरन वोनुनम कुनुय वचुन,
नेबरु दोपनम अन्दरुय अचुन।
सुय मे ललि गव वाख तु वचुन,
तवय मे ह्योतुम नंगय नचुन॥ २॥

बहिरङ्गाद् अन्तरङ्गं स्वं
प्रविशेति गुरुर्जगौ।
कायान्तरम् अनेनाभूद्
विवस्त्रा नर्तने रता॥ २॥

गुरु ने मुझे एक ही वचन की दीक्षा दी—बाहर से भीतर (अन्दर) चली जा। इसी एक वचन ने मेरी काया पलट दी और मैं नंगी (विवस्त्र) नाचने लगी॥ २॥

लल बु लूसुस छाँडान तु गारान,
हल मे कोरमस रसुनि शेतिय।
वुछुन ह्योतमस तारय डीठ्यमस बरन,
मे ति कल गनेयि ज़ोगमस तंत्य॥ ३॥

द्रष्टुं विभुं तीर्थवरान्गताहं
श्रान्ता स्थिता तद्गुणकीर्तनेषु।
ततोऽपि खिन्नास्मि च मानसेन
स्वान्तर्निविष्टा खलु तद्विमर्शे॥ ३॥*

मैं लल उस (परमशक्ति) को ढूंढते-ढूंढते और खोजते-खोजते मुरझा (थक-हार) गयी। फिर भी मैंने अपनी सामर्थ्यानुसार उसे खोजने हेतु शत-शत ज़ोर और लगाये। जब निकट पहुँचकर उसे देखने लगी तो पाया कि उसके किवाड़ों में कुंडी लगी हुई है। (मैंने फिर भी हिम्मत नहीं हारी) मेरी जिज्ञासा बढ़ती ही गयी और मैं वहीं पर उसकी ताक में बैठ गयी॥ ३॥

लल बु द्रायस सौमन बागु बरस,
वुछुम शिवस शखुथ मीलिथ तु वाह।
तंत्य लय कंरुम अमर्यत सरस,
ज़िदय मरस तु में करि क्याह॥ ४॥

लल्लाहं गता यावन्मानसाराम द्वारकम्।
विलोकितस्तदा शक्त्या शिवो विलसितो मया।
स्वात्मा निमज्जितस्तोषात् तस्मिन् पीयूषपुष्करे।
जीवन्तीव मृता तावत् किं कुर्यां विवशा सती॥ ४॥

मैं लल जब स्वमन रूपी बाग़ के द्वार पर पहुंची तो देखा कि (भीतर) शिव शक्ति से मिले हुए हैं। आनन्द-मग्न होकर मैंने अपने आपको (परमात्मा रूपी) अमृत-सर में लय कर दिया। अब अगर मैं जीते जी मर भी जाऊँ तो मुझे कोई चिंता नहीं॥ ४॥

गौरु कथ हृदयसमंज़ बाग रंटुम,
गंगु ज़ल नांविम तन तु मन।
सौदीह जीवन मौरवतय प्रोवुम,
यमु बयि द्रोलुम पोलुम अरत॥ ५॥

गुरोर्गिरं गीर्णवती निजान्तरे
गङ्गाम्भसा धौतवती निजां तनुम्।
एकं शिवं प्राप्तवती यदा तदा
मुक्ता मुदा मृत्युभयात् स्वजीवने॥ ५॥

गुरु की बात (शिक्षा) को मैंने बीच हृदय में धारण कर लिया। गंगाजल से इस तन और मन को धो डाला। तब जीते-जी इस जीवन से मुक्ति प्राप्त कर ली और यम का भय सहते (परवाह न करते) हुए एक (शिव) को अपना बनाया॥ ५॥

कलन कालु ज़ाल्य योंदवय च़े गोंल,
वोन्दिव गिह वा वोन्दिव वनवास ।
ज़ानिथ सरवुगथ प्रोंबो अमोंल,
युथुय ज़ान्यख त्युथुय आस ।। ६ ।।

कालजालेन साकं चेत् कलना-विलयो भवेत्,
तदा गृही वा वनवासी भव त्वं नात्र बन्धनम् ।
जानीहि सर्वगं नाथममलं सर्वतो मुखम्,
तदा ज्ञानानुरूपं ते रूपं भावीति निश्चयः ।। ६ ।।

काल के जाल (काल-चक्र) के साथ-साथ (रे मनुष्य !) यदि तेरी कलनाएँ (इच्छाएँ) भी मिट जाएँ तो चाहे फिर तू वनवासी बने या गृहस्थ, कोई अन्तर नहीं पड़ता । बस, इतना जान ले कि प्रभु सर्वगत और निर्मल है । जैसा उसको समझेगा वैसा ही तुझे प्राप्त होगा ।। ६ ।।

आयस वते गंयस नु वते,
सुमन सोंथि मंज़ लूसुम दोंह ।
चन्दस वुछुम तु हार नु अथे,
नावि तारस दिमु क्या बो ।। ७ ।।

समागता सरलपथेन विश्वे
निवर्तने राजपथो न विद्यते ।
अस्तंगते दिनकरे स्वकरे न देयं
यायां कथं निधनपारमपारतोयम् ।। ७ ।।

(इस संसार में) मैं सीधी राह से तो आ गयी किन्तु (मोह-माया में पड़कर) यहाँ से सीधी राह से लौट न पाई । अभी बीच सेतु से गुज़र ही रही थी कि दिन ढल गया । (साधना रूपी कमाई की) जेब में हाथ डाला तो देखा वहाँ एक कौडी भी नहीं । अब भला पार उतरने के लिए (नाविक को) दूँ तो क्या दूँ ? ।। ७ ।।

असि पौंदि ज़ौंसि ज़ामि,
न्यथुय सनान करि तीरथन ।
वुहुर्य वंहरस नोनुय आसे,
निशि छुय तु परज़नावतन ।। ८ ।।

स्नातं हसन्तं विविधं विधेयं
कुर्वन्तमेतत्पुर एव सन्तम् ।
पश्यात्मदेवं निजदेह एव
कृतं प्रदेशान्तरमार्गणेन ।। ८ ।।*

(रे मनुष्य ! यह शिव ही है जो) तेरे भीतर (कभी) हँसता है, कभी छींकता है, कभी अंगड़ाइयाँ लेता है और कभी खाँसता है। वह नित्य (तेरे मन के संकल्प-विकल्प रूपी विचारों के) तीर्थों पर स्नान करता है। वर्षभर निर्वसन रहता है। (तेरा शरीर ही उसका वसन है) अर्थात् वह तेरे भीतर (पास) है, उसे (रे मनुष्य !) तू ढूंढ ले।। ८ ।।

आयस कमि दिशि तु कमि वते,
गछ़ु कमि दिशि कवु ज़ानु वथ ।
अनति दाय लगिमय तते,
छ़ैनिस फोकस कांह ति नो सथ ।। ९ ।।

कया दिशा केन पथागताहं
पश्चाद्गमिष्यामि पथाऽथ केन ।
इत्थं गतिं वेद्मि निजां न तस्मात्
उच्छ्वासमात्रेण धृतिं भजामि ।। ९ ।।*

मैं किस दिशा और किस मार्ग से आई, नहीं जानती। किस दिशा और किस मार्ग से (वापस) जाऊँगी, यह भी नहीं जानती। (दिशा-बोध तभी हो सकता है) जब अन्ततः मुझे कोई सत्परामर्श दे। क्योंकि मात्र श्वास-साधन (योग, प्राणायाम आदि) पर अवलंबित रहने में कोई सार नहीं है।। ९ ।।

आसा　बोल　कडिन्यम　सासा,
　　मे　मनि　वासा　खीद　ना　हेंये।
बों योंद सहज़ु शंकरु बंखुच़ आसा;
　　मंकरिस　सासा　मल　क्या　पेंये ॥ १० ॥

अवाच्यानां　　सहस्राणि
　　कथयन्तु　न　मन्मनः।
मालिन्यम्　　एत्युदासीनं
　　रजोभिर्　मुकुरो　यथा ॥ १० ॥*

मेरे लिए चाहे कोई अपने मुँह से हजार गालियाँ भी क्यों न निकाले मेरे मन के वासी को (आत्मा को) उससे किसी तरह का खेद नहीं पहुँचेगा। मैं अगर सहज (स्वात्म) शंकर की भक्त हूँ तो भला मेरे मन-दर्पण पर मैल कैसे जम सकती है? ॥ १० ॥

कंद्यव　गेंह　तेंज़्य　कंद्यव　वनवास,
　　वेंफोंल　मन　ना　रंटिथ　तु　वास।
द्यन　राथ　गंज़रिथ　पनुन　श्वास,
　　युथुय　छुख　तु　त्युथुय　आस ॥ ११ ॥

कति　गता　गहनं　गृहत्यागिनो
　　विफलिता　अवशीकृतमानसाः।
विगणयन्निज　प्राण　परिक्रियां
　　परिलभस्व　सदा　निजतोषणम् ॥ ११ ॥

कइयों ने घर त्याग दिए और वनवास करने लगे। किन्तु तब तक यह सब विफल है जब तक कि (चंचल) मन को वश में नहीं किया जाता। (रे मनुष्य!) तू दिन-रात (ध्यानपूर्वक) अपने श्वासोच्छ्वास की गिनती कर अर्थात् अपने जन्म को बहुमूल्य समझ कर उसकी रक्षा कर। तू जिस स्थिति में है, उसी से संतुष्ट रह ॥ ११ ॥

कोंह छी नेंदरि हंती वुदी,
केंज्रन वुद्यन न्यसर पेंयी।
कोंह छी सनान कंरिथ अपुती,
कोंह छी गेंह बंजिथ ति अक्री ॥ १२ ॥

कश्चित् प्रसुप्तोऽपि विबुद्ध एव
कश्चित् प्रबुद्धोऽपि च सुप्ततुल्यः।
स्नातोऽपि कश्चिदशुचिर्मतो मे
भुक्त्वा स्त्रियं चाप्यपरः सुपूतः ॥ १२ ॥*

कुछ (व्यक्ति ऐसे होते हैं जो) निद्रामग्न होकर भी जागृत रहते हैं। कुछ जागृत होने पर भी निद्रामग्न रहते हैं। कुछ स्नान करने पर भी अपवित्र ही रहते हैं तथा कुछ घर (गृहस्थी) करने पर भी अक्रिय अर्थात् निर्लिप्त रहते हैं ॥ १२ ॥

क्याह करु पाँज्रन दंहन तु कहन,
वोंखशुन यथ लेंजि कंरिथ यिम गंये।
सांरी समुहन यथ रज़ि लमुहन,
अदु क्याज़ि राविहे कहन गाव[1] ॥ १३ ॥

पञ्च चैव विकारा दश तथैकादश संख्यकाः।
गता विहाय मे देहं भिन्न-भिन्नानुमार्गगाः।
यदि ते गां हि कर्षेयुरेक मार्गानुसारतः।
अहो मदीया धी-धेनुः कथं भूयात् कुमार्गगा ॥ १३ ॥

इन पाँच (तत्त्वों), दस (विकारों) और ग्यारह (पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और एक मन) का क्या करूँ। ये सब मेरी हंडिया (देह) को खाली कर गये। (सभी भिन्न दिशाओं की ओर जा रहे हैं) काश ! ये सभी मिलकर एक ही दिशा में रस्सी को खींचते तो भला फिर ग्यारह की देखरेख रहते भी गाय कैसे भाग सकती थी[1] ? ॥ १३ ॥

---

१ 'कहन गाव रावुन्य' एक मुहावरा है जिसका अर्थ है अत्यधिक सावधानी के बाद भी किसी चीज़ का खो जाना। मुहावरे का शाब्दिक अर्थ है—ग्यारह (ग्वालों) की देखरेख से गाय का [illegible] ॥ १४ ॥

कुश पोश तेल दूफ ज़ल ना गछ़े,
सदबावु गौरु कथ युस मनि हेंये।
शम्बूहस सौरि नैत्य पनुनि येंछ़े,
सोय दपिज़े संहूज़ु अक्रेय ना ज़ेंये ॥ १४ ॥

पुष्पादिकं द्रव्यमिदं न तस्य
पूजासु सर्वमुपयोगि किंचित्।
गुरूपदेशाद् दृढया च भक्त्या
स्मृत्यार्च्यते येन विशुद्ध आत्मा ॥ १४ ॥*

(साधना के लिए) कुशा, तेल, दीप, जल आदि की कोई आवश्यकता नहीं है। सद्‌भाव से जो गुरु की बात मन में उतारे और नित्य भावना से शंभु का स्मरण करे, वह कर्म-बंधन से मुक्त हो कर सहज-आनन्द में तल्लीन हो जाता है ॥ १४ ॥

ख्यथ गंडिथ शेंमि ना मनस,
ब्रांथ यिमव त्रांव तिमय गंयि खंसिथ।
शास्तुर बूज़िथ छु यमु बयि क्रूर,
सु ना पोंज़ तु दंनी लंसिथ ॥ १५ ॥

खादनाद् भूषणाद्वापि
मनो यस्य गतभ्रमम्।
स मुक्तो नोत्तमर्णाद्यो
गृह्णात्यर्थं हि सोऽनृणः ॥ १५ ॥*

(मात्र) खाने और पहनने से मन को शांति नहीं मिलती। जिन्होंने मिथ्या आशाओं को त्याग दिया, दरअस्ल वही उन्नति के शिखर पर चढ़ गये। शास्त्र सुन-सुनकर यम-भय बड़ा क्रूर दिखने लगता है। जो इन शास्त्रों के चक्कर में नहीं पड़ा अर्थात् जिसने उधार नहीं लिया, वही धनी है, आनन्द का भागीदार है ॥ १५ ॥

ग्यानुक्य अम्बर लागिथ तने,
थिम पद ललि दंप्य तिम हृदि अंख ।
कारुन्य प्रनावुक्य लय कौर लले,
च्यथ जोति कोसुन मरनुन्य शंख ।। १६ ।।

ज्ञानाम्बरेण परिभूषय भो! निजाङ्गम्
लल्लोक्त पावनपदैश्च विभूषयान्तः ।
एवं यथा लल्ल गता स्वरूपं
तथैव ते मरणभयं विधूयते ।। १६ ।।

(रे मनुष्य ! तू) तन पर ज्ञान के अम्बर (वस्त्र) धारण कर, लल ने जो पद कहे, उन्हें अपने हृदय में उतार। ऐसा करने से जिस प्रकार लल (परम-शिव में) लीन हो गयी, उसी प्रकार तेरे चित्त में भी ज्योति उत्पन्न होगी और मरण की शंका लुप्त हो जाएगी ।। १६ ।।

अभ्यास किनिय व्यकास फौलुम,
सीं प्रकाश ज़ोनुम यिहोय दीह ।
प्रकाश द्यान मौरव यी दोरुम,
सौख्य बौरुम कौरुम तिय ।। १७ ।।

अभ्यासतोऽन्तर्जले नलिनं प्रफुल्लं
ज्ञातं मया स्वभवने स्फुरति प्रकाशः ।
कृत्वा प्रकाशमचलं निजध्यानयोगात्
शश्वत्सुखे सततमग्नमना अभूवम् ।। १७ ।।

अभ्यास से मेरे हृदय में (आत्म-ज्ञान रूपी) कमल विकसित हुआ और मैं जान गयी कि स्व-प्रकाश मेरी देह में ही स्थित है। तब मैंने ध्यानपूर्वक प्रकाश को स्थिर किया और नित्य सुख प्राप्त करने लगी ।। १७ ।।

ललि में दोंपुख लूख हांड करनय,
तवय च्रंजिम मनय शेंख ।
माग नोवुम नार च्रोलुम,
क्रुहिन्य कोसम मनय शेंख ।। १८ ।।

लल्ले जनास्तव विलोक्य विचित्रवेषं
निन्दारता इति मुहुः सुजना अवोचन् ।
तेनागमद् गोपनभाव आत्मनः
शीतोष्णशोधिततया विमलं मनोऽभूत् ।। १८ ।।

साधनावस्था में देख मुझे कई विचारवानों ने कहा कि लल, तुझे लोग पीड़ा पहुंचायेंगे, तेरी निंदादि करेंगे । मगर, इससे मेरे मन का दुराव और दूर हुआ । माघ मास की सर्दी से अपने तन को नहलाया और गर्मी को सहन किया, तब जाकर मन की काली इच्छाएँ समाप्त हो गयीं ।। १८ ।।

गगन च्रुंय बूतल च्रुय,
च्रुय द्यन पवन तु राथ ।
अरुग च्रंदन पोश पोन्य च्रुय,
च्रुय छुख सकलय तु लाग्यज़ि क्याह ।। १९ ।।

आकाशो भूर्वायुरापोऽनिलश्च
रात्रिश्चाहश्चेति सर्वं त्वमेव ।
तत्कार्यत्वात्पुष्पमर्घादि च त्वं
त्वत्पूजार्थं नैव किंचिल्लभेऽहम् ।। १९ ।।*

तू ही गगन, भूतल भी तू ही । तू ही दिन, पवन और रात । अर्घ्य, चंदन, पुष्प, पानी भी तू ही । तू ही सब कुछ है, तो फिर तुझे क्या चढ़ाऊँ ? ।। १९ ।।

गाट्ुलाह् अख वुछुम बोँछि सूत्य मरान,
पन ज़न हरान पुहनि वावु लाह् ।
नेँश बोँद अख वुछुम वाज़स मारान,
तनु लल बोँ प्रारान छ्योँन्यम ना प्राह् ।। २० ।।

यथा पौषस्य वातेन पत्रहीनो भवेत् तरुः ।
तथैव देहहीनोऽभूज्जनो बुद्धो बुभुक्षया ।
अन्यच्च पाचको दृष्टस्ताडच्यमानः कुबुद्धिना ।
लल्लाहं तत्प्रतीक्षेनु भवबन्ध विमोक्षणम् ।। २० ।।

(मैंने) एक प्रबुद्ध को भूख से मरते देखा, मानो पौष-पवन (पतझर) से जर्जरित हो रहा हो तथा एक रसोइए को एक निर्बुद्धि से पिटते देखा। (इस विरोधाभास को देखकर) मैं लल उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगी जब मेरे भवबंधन छूट जाएँ ।। २० ।।

च़ु ना बोँह ना देँय ना द्यान,
गव पानय सरवुक्रिय मंशिथ ।
अन्तो ड्यूठुख केँह ना अनवय,
गयि सथ लयि पर पशिथ ।। २१ ।।

त्वं नासि नाहं न च तत्रध्येयं
ध्यानं न तत्रास्तिच सर्वकारकः ।
पश्यन्ति नो तत्र च नेत्रहीना
शिवं विपश्यन्ति गुणाभिरामाः ।। २१ ।।

वहाँ न तू है, न मैं हूँ, न ध्येय है और न ध्यान। सर्वक्रयी (सर्व-कारक परब्रह्म) भी वहाँ खो जाते हैं। अन्धों को तो वहाँ कुछ नहीं दिखता किन्तु सहज गुणियों को परमशिव के दर्शन हो जाते हैं ।। २१ ।।

त्रामर छंतुर रथु सिंहासन,
हलाद, नाट्य रस तूला परयंक ।
क्याह मोनिथ येति सिथुर आसुवुन,
कोंज़नु कांसीय मरुनुन्य शंक ।। २२ ।।

सिंहासनं चामरछत्रसंयुत
माह्लादकं मोहक भोगसाधनम् ।
किं तत् स्थिरं चिन्तयसि स्वमानसे
ज्ञातं, त्वया मरणभयं न ज्ञातम् ।। २२ ।।

चँवर, छत्र, रथ, सिंहासन, आह्लाद, नाट्य-रस, रेशमी पर्यंक आदि को (रे मनुष्य !) तूने क्या इस संसार में स्थिर माना है ? (ये सारे ऐश्वर्य भोग के साधन अस्थिर हैं, स्थिर अगर कोई वस्तु है तो वह है) मरने की शंका, जिसे तू भुला बैठा है ।। २२ ।।

तुरि सलिल खोंत तांय तुरे,
हिमि त्रे गंयि ब्यन अब्यन विमरशा ।
त्रयतनि रव बाति सब समय,
शिव मय त्रराज्र जगपशा ।। २३ ।।

मायाजाड्यं तज्जडं बोधनीरं
संसृत्याख्यं तद्घनत्वं हिमं च ।
चित्सूर्येऽस्मिन् प्रोदिते त्रीणि सद्यो
जाड्यान्मुक्तं नीरमाद्यं शिवाख्यम् ।। २३ ।।*

सलिल को जब (अत्यधिक) शीत अभिभूत कर लेती है तो वह जम जाता है अथवा हिम बन जाता है । विमर्श से काम लिया जाय तो इन तीन रूपों (सलिल, जमने की क्रिया व हिम) में तत्वतः कोई भिन्नता नहीं है । जब चैतन्य (विवेकरूपी) सूर्य इन पर चमकेगा तो ये सब एक समान हो जाएँगे और तब चराचर जग शिवमय दिखाई देगा ।। २३ ।।

दीहचि लरि दारि बर त्रोंपुरिम,
प्रानु च्चूर रोंटुम तु द्युतमस दम।
हृदयिचि कूठरि अन्दर गोंडुम,
ओमुकि चोबुकु तुलमस बम॥ २४ ॥

सम्यङ्निरुद्धा निजकायमार्गा
मया गृहीतो हृदि प्राणचौरः।
नादं चकाराति मुहुः प्रताडित
ओङ्कारकायान्नु कशाभिघातात्॥ २४ ॥

अपने देहरूपी मकान की खिड़कियाँ व दरवाज़े बंद कर मैंने उसमें प्राणरूपी चोर को पकड़ लिया और उसे बंद कर दिया। फिर हृदय की कोठरी में उसे बाँधकर ओऽम् के चाबुक से उसको पीट-पीटकर गुंजा दिया यानी सहज नाद गूंज उठा॥ २४॥

दीव वटा दिवुर वटा,
प्यठ बोंन छु यीकुवाठ।
पूज़ कस करख होट् बटा,
कर मनस तु पवनस संगाठ॥ २५ ॥

चैत्यं देवो निर्मितौ द्वौ त्वया यौ
पूजाहेतोस्तौ शिलातो न भिन्नौ।
देवोऽमेयश्चित्स्वरूपो विधेयं
तद्व्याप्त्यर्थं प्राणचित्तैक्यमेव॥ २५ ॥*

देव भी पत्थर है और देवल (मन्दिर) भी पत्थर है। ऊपर नीचे एक-सी (पाषाणमय) स्थिति है। (इसलिए) रे पंडित! तू पूजा किसकी करेगा? अतः अपने मन और पवन (प्राण) को एकीकृत कर दे (इसी में सार है)॥ २५॥

दंमी डीठुम गंज दज़ुवुनी,
दंमी ड्यूठुम दुह न तु नार।
दंमी डीठुम पांडुवनहुंज़ मांजी,
दंमी डीठुम क्रांजी मास ॥ २६ ॥

क्षणेन दृष्टं ज्वलितमृजीषं
क्षणेन नाग्निर्न च धूमरेखा।
क्षणेन कुन्ती मुदिता पुनः शुचा
घटस्य कर्तुर्हि गृहं समाश्रिता ॥ २६ ॥

अभी जलता हुआ चूल्हा देखा, और अभी उसमें न धुआँ देखा और न आग। अभी पांडवों की माता को देखा, और अभी उसे एक कुम्हारिन के यहाँ शरणागता मौसी के रूप में देखा। (समय के खेल को कोई नहीं जान सका है!) ॥ २६ ॥

दंमी डीठुम नद वंहवुनी,
दंमी ड्यूठुम सुम न तु तार।
दंमी डीठुम थंर फौलुवुनी,
दंमी ड्यूठुम गुल न तु खार ॥ २७ ॥

सद्यो वहन्तीह नदी विलोकिता
न तत्र सेतुर्नच तरणसाधनम्।
बिलोकिता पुष्पसमन्विता लता
पुनर्न पुष्पं नच कण्टकं ततः ॥ २७ ॥

अभी मैंने बहती हुई नदी को देखा, और अभी उसपर न कोई सेतु देखा और न पार उतरने के लिए पुलिया ही। अभी खिली हुई फूलों की एक डाली देखी, और अभी उसपर न गुल (सुमन) देखे और न कांटे ॥ २७ ॥

दमी ड्यूठुम शबनम प्यवान,
दमी ड्यूठुम प्यवान सूर।
दमी डीठुम अनिगटु रातस,
दमी ड्यूठुम दौंहस नूर ॥ २८ ॥

नीहारविन्दुपतनेन निरीक्षिता श्रीः
तत्रैव नेत्रपथगस्तु हिमप्रपातः।
जाता विकारवशगा तमसा तमिस्रा
दृष्टस्तदैव दिवसे मधुरः प्रकाशः ॥ २८ ॥

अभी शबनम को गिरते देखा और अभी पाला पड़ते देखा। अभी रात में अन्धकार को देखा और अभी दिन में नूर (प्रकाश) देखा ॥ २८ ॥

दमी आंसुस लौंकुट कूरा,
दमी सपनिस जवां पूर।
दमी आसुस फेरान थोरान,
दमी सपनिस दज़िथ सूर ॥ २९ ॥

प्रागहं बालिकाऽभूवं
पश्चाद् यौवनशालिनी।
अहो गतिमती भूत्वा
साम्प्रतं भस्मतां गता ॥ २९ ॥

अभी मैं एक छोटी लड़की थी और अभी पूरी जवान बन गयी। अभी मैं चलती फिरती थी और अभी जल कर राख हो गयी ॥ २९ ॥

नाबुद्य बारस अटु गंड ड्यौल गोम,
देह कान हौल गोम ह्यकु क्यहो।
गौरु सुंद वनुन रावन त्यौल प्योम,
पहलि रौस ख्यौल गोम ह्यकु क्यहो॥ ३० ॥

अद्यावधि सिताभारोधृतोऽग्रे धार्यते कथम्।
धनुर्दण्डसमोदेहो भुग्नो भारोहि बाधते।
न रुचितो गुरुनिर्देशः सावहेलं पृथग्गता।
अधुना हन्त दिङ्मूढा यथाऽजा पालकं विना॥ ३० ॥

(जिस) मिश्री (सांसारिक सुख-संपदाओं) की गठरी (मैं कन्धे पर ढो रही थी उस) की गाँठ ढीली पड़ गयी। देह कमान के समान झुक गयी। अब भला यह भार कैसे वहन कर सकूँगी। ऊपर से गुरूपदेश को भी कड़ुआ जानकर अवहेलना की। अब तो मेरी हालत गड़रिए के बिना रेवड़ (भेड़ों के समूह) की जैसी हो गयी है। भला यह भार अब कैसे वहन कर सकूँगी ! ॥ ३० ॥

नाथा ! ना पान ना पर ज़ोनुम,
सदाय बोदुम यि कौं दिह।
च़ु बो बो च़ु म्युल नो ज़ोनुम,
च़ु कुस बो कौसु छु संदिह॥ ३१ ॥

नाथ न त्वं न चात्मापि
ज्ञातो देहाभिमानतः।
स्वस्यैक्यं च त्वया तेन
का आवामिति संशयः॥ ३१ ॥*

हे नाथ ! न मैंने (कभी) अपने (स्व) को और न (कभी) पर को जानने की कोशिश की। सदैव इस कुदेह की चिंता करती रही। तू मैं, और मैं तू—इस मेल को भी कभी न जान सकी। मैं तो इसी सन्देह में पड़ी रही कि तू कौन और मैं कौन ! ॥ ३१ ॥

नियम कर्‌योथ गरबा,
च्यतस कर बा पेंयी ।
मरुनु ब्रोंठ्य मर बा,
मंरिथ तु मरतबु हुरी ।। ३२ ।।

गर्भवासे प्रतिज्ञातं
विस्मृतं किन्तु कारणम् ।
भव जीवन्मृतो येन
पद्यसे परमं पदम् ।। ३२ ।।

गर्भवास में (तूने रे मनुष्य !) (आत्म-चिंतन का जो) नियम पाला था, उसे तू भूल क्यों गया ? (अभी भी मौक़ा है) तू मरने से पहले ही मर जा क्योंकि मर के ही मरतबा (पद, यश) बढ़ता है ।। ३२ ।।

प्रथुय तीरथन गछान संन्ययास,
गारान सौंदरशनु म्यूल ।
च्रित्ता पंरिथ मव निशपथ आस,
डेशख दूरे द्रमुन न्यूल ।। ३३ ।।

यत्नेन मोक्षैकधियः सदामी
संन्यासिनस्तीर्थवरान् प्रयान्ति ।
चित्तैकसाध्यो न स लभ्यते तै-
र्दूर्वास्थलं भात्यतिनीलमारात् ।। ३३ ।।*

(परब्रह्म के) सुदर्शन हेतु संन्यासी प्रत्येक तीर्थ में जाता है । (पर उसे नहीं मालूम कि परब्रह्म उसके चित्त में ही है) रे मनुष्य ! तू अपने चित्त को पढ़ और इस निष्पथ (तीर्थाटन आदि) को त्याग दे । तीर्थयात्रा दूर से घास का नीला दिखने के बराबर है (अर्थात् दूर के ढोल सुहावने वाली बात है) ।। ३३ ।।

श्रान तय ध्यान क्याह सन करिय,
च्यतस रठ त्रकर्‌य वग ।
मनस तु पवनस मिलवन कर,
सहज़स मंज़ कर तिरथ स्नान ।। ३४ ।।

स्नानेन ध्यानेन कथं भविष्यति
कार्यस्य सिद्धिरवशीकृतात्मना ।
प्राणस्य मनसा सह योजनेन
सहजस्वरूपे कुरु स्नानमत्र ।। ३४ ।।

स्नान और ध्यान से भला क्या होगा ! तू अपने चित्त की लगाम को जरा मज़बूती से पकड़ । मन और पवन को मिला दे तथा सहज (परम शिव) के तीर्थ में स्नान कर ।। ३४ ।।

पानस लॊगिथ रूदुख मॆ च्रु,
मॆ च्रॆ छांडान लूसुम दोंह ।
पानस मंज़ यॆलि ड्यूठुख मॆ च्रु,
मॆ च्रॆ तु पानस ग्युतुम छोंह ।। ३५ ।।

देहादिषट्कोशपिधानतस्त्वा-
मप्राप्य खिन्नास्मि चिरं महेश ।
उपाधिनिर्मुक्तविबोधरूपं
ज्ञात्वाद्य विश्रान्तिमुपागताऽहम् ।। ३५ ।।*

तुम मेरे भीतर छिपे रहे और मैं तुम्हें दिन-रात (बाहर) ढूंढती रही । (जिस दिन) तुम्हें अपने भीतर छिपा पाया (उस दिन से) मुझे अभिन्नत्व का बोध हो गया और मैं आनंदमग्न होकर झूम उठी ।। ३५ ।।

पर ताय पान येंम्य सोंम मोन,
येंम्य ह्युव मोन द्यन क्योंह राथ ।
येंम्यसुय अदुय मन सांपुन,
तंमी ड्यूठुय सुरु गुरु नाथ ।। ३६ ।।

आत्मा परो दिनं रात्रिर्यस्य सर्वमिदं समम् ।
आतमद्वैतमनसस्तेन दृष्टोऽमरेश्वरः ।। ३६ ।।*

जिसने पर और स्व को समान माना, जिसने दिन और रात को एक माना, जिसका मन अद्वय बन गया, उसी ने सुरगुरु नाथ (अमरेश्वर) के दर्शन किये ।। ३६ ।।

ब्रोंठ कालि आसन तिथी केरन,
टंग च्रूँठ्य पपन च्रेरन सुत्य ।
माजि कोरि अथुवास करिथ नेरन,
दौंह द्यन बरन परद्यन सुत्य ।। ३७ ।।

आगामि - कालस्य कुलक्षणं यत्
कालानपेक्षी फलपाकयोगः ।
दास्यति स्वकन्यां परकामुकाय
जननी धनार्थं न जुगुप्सितं स्यात् ।। ३७ ।।

आने वाले समय के (कलियुग के) लक्षण कुछ ऐसे होंगे कि नाशपातियां और सेब खूबानियों के साथ पकेंगे (यद्यपि दोनों भिन्न मौसम में पकते हैं) और माताएँ (अपनी) पुत्रियों के संग बाहों में बाहें डाले ग़ैरों के यहाँ दिन बितायेंगी ।। ३७ ।।

बान गौंल तांय प्रकाश आव ज़ूने,
ज़ंदुर गौंल तांय मौंतुय च्यथ ।
च्यथ गौंल तांय कोंह ति ना कुने,
गंय बूर बुवह सौंर व्यस.रज़िथ क्यथ ।। ३८ ।।

भानौ नष्टे काशते चन्द्रबिम्बं
तस्मिन्नष्टे काशते चित्तमेव ।
चित्ते नष्टे दृश्यजातं क्षणेन
पृथ्व्यादीदं गच्छति क्वापि सर्वम् ।। ३८ ।।*

भानु (सूर्य) के गलने पर चन्द्रमा में प्रकाश आता है । चन्द्र के गलने पर चित्त प्रकाशित हो जाता है । चित्त के गल जाने पर कहीं कुछ नहीं रहता तथा 'भूर्भुव:स्व:' अस्तितव-शून्य हो जाते हैं ।। ३८ ।।

कुस डिंगि तु कुस जागि,
कुस सर वतरि तौंलि ।
कुस हरस पूज़ि लागि,
कुस परमु पद मेलि ।। ३९ ।।

सुप्तः कः कः प्रबुद्धश्च
किं सरो यन्नु रिष्यति ।
किं वस्तु यद् हरस्याचर्यं
प्राप्यं किं परमं पदम् ।। ३९ ।।

कौन सोया हुआ है और कौन जागा हुआ है ? वह कौन-सा सरोवर है जिससे बूंद-बूंद रिसती है ? वह कौन-सी वस्तु है जो हर (शिव) के लिए पूजनीय है ? वह कौन-सा परमपद है जो (साधनोपरान्त) प्राप्य है ? ।। ३९ ।।

मन डिंगि तु अकौल ज़ागि,
दाड्य सर पंचुयिंदरिय वतरि तौंलि।
सौंव्यञ्जारु पोन्य हरस पूज़ि लागि,
परमु पद च्रेतनु शिव मेलि ।। ४० ।।

सुप्तं मनो जागरणं तदात्मनः
सरो निरुद्धेन्द्रियपञ्चकं स्रवेत्।
शिवाभिषेको हि जलेन तेन
शिवोपलब्धिर्हि परं पदं स्यात् ।। ४० ।।

जब मन सो (तल्लीन हो) जाता है तो 'अकुल' अर्थात् अन्तरात्मा जागृत हो जाती है। सुदृढ़ रहने वाली पंचेन्द्रियों से उसपर स्वात्म-चिंतन के जल की पूजा होती है और तब शिव-चैतन्य का परमपद मिलता है ।। ४० ।।

मंकरिस मल ज़न च्रौलुम मनस,
अदु लंबुम ज़ंनिस ज़ान।
सु यैलि ड्यूठुम निशि पानस,
सोरुय सुय तु बु नो कैंह ।। ४१ ।।

चित्तादर्शे निर्मलत्वं प्रयाते
प्रोद्भूता मे स्वे जने प्रत्यभिज्ञा।
दृष्टो देवः स्वस्वरूपो मयासौ
नाहं न त्वं नैव चायं प्रपञ्चः ।। ४१ ।।*

जब मेरे मन-दर्पण की मैल धुल गई तो मुझे आत्म-ज्ञान हो गया तथा उसे (शिव को) अपने में ही स्थित पाया। मैंने देखा कि वही सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं ।। ४१ ।।

कुस पुश तु कॉसु पुशॉनी,
कम कुसुम लॉग्यज़्यस पूज़े ।
कवु गोंड दिज़्यस ज़लुचि दॉनी,
कवु सनु मंतुरु शंकर स्वात्मु वुज़े ॥ ४२ ॥

कः पौष्पिकः कापि च तस्य पत्नी
पुष्पैश्च कैर्देववरस्य पूजा ।
कार्या तथा किं गडुकं विधेयं
मंत्रश्च कस्तत्र वद प्रयोज्यः ॥ ४२ ॥*

माली कौन ? और मालिन कौन ? कौन से कुसुम उसकी पूजा में चढ़ाओगे ? किस जल से उसका अभिषेक करोगे ? और वह मंत्र कौन-सा है जिससे स्वात्म-शंकर के लिए प्रयोज्य (अभिमंत्रण योग्य) है ? ॥ ४२ ॥

मन पुश तय यछ पुशॉनी,
बावुक्य कुसुम लॉग्यज़्यस पूज़े ।
शेंशि रसु गोंडु दिज़्यस ज़लु दॉनी,
छोंपि मन्तुरु शंकर स्वात्मु वुज़े ॥ ४३ ॥

इच्छामनोभ्यां ननु पौष्पिकाभ्या-
मादाय पुष्पं दृढभावनाख्यम् ।
स्वानन्दपूरैर्गडुकं च दत्वा
मौनाख्यमंत्रेण समर्चयेशम् ॥ ४३ ॥*

मन माली और जिज्ञासा मालिन । भाव-कुसुमों से उसकी पूजा करना । शशिरस (अमृत जल) से उसका अभिषेक करना और तब मौन रूपी मंत्र-जाप से स्वात्म-शंकर की आराधना करना ॥ ४३ ॥

मल वोंदि ज़ोलुम,
जिगर मोरुम ।
तेंलि लल नाव द्राम,
येंलि दंल्य त्राव्यमस तंत्य ॥ ४४ ॥

ततोऽत्र दृष्ट्वावरणानि भूयो
ज्ञातं मयात्रैव भविष्यतीति ।
भङ्क्त्वा यदा तानि च संप्रविष्टा
लल्लेति लोके प्रथिता तदाहम् ॥ ४४ ॥*

(जब) मैंने हृदय की सारी मैल जला डाली, जिगर (इच्छाओं) को भी मार डाला और उनके द्वार पर अंचल पसारे जमकर बैठ गई, तब कहीं जाकर मेरा लल नाम प्रसिद्ध हो पाया ॥ ४४ ॥

मारुख मारुबोथ काम क्रूद लूब,
नतु कान बंरिथ मारुनय पान ।
मनय ख्यन दिख स्व व्याञ्चारु शम,
विशय तिहुंद क्याह क्युथ द्रूव ज़ान ॥ ४५ ॥

काम क्रोधादिकान् शत्रून्, नाशयात्मविनाशकान् ।
सद्विचारेण ते शान्तिं गमिष्यन्ति न संशयः ।
विषयाः सन्ति के तेषां दृढं सम्यग् विचारय ।
एवं कृतप्रयत्नस्त्वं कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ४५ ॥

काम, क्रोध और लोभ घातक हैं, (रे मनुष्य !) इनको मारकर समाप्त कर दे, अन्यथा ये तुझे ही अपने तीरों से मार देंगे । इन्हें सुविचारों के खाद्य द्वारा शांत स्थिति में ले आ और उनके विषय क्या हैं, यह दृढ़ता से [illegible] की कोशिश कर ॥ ४५ ॥

मूड ज़ॉनिथ पशिथ ति कोंर,
कोंल श्रुत वोंन ज़डरूफ आस।
युस यि दपी तस ती बोल,
यिहोय तत्वु विदिस छु अब्यास ।। ४६ ।।

ज्ञात्वा सर्वं मूढवत्तिष्ठ स्वस्थः
श्रुत्वा सर्वं श्रोत्रहीनेन भाव्यम् ।
दृष्ट्वा सर्वं तूर्णमन्धत्वमेहि
तत्त्वाभ्यासः कीर्तितोऽयं बुधेन्द्रैः ।। ४६ ।।*

(रे मनुष्य ! तू) जानते हुए भी मूढ़ बन, देखते हुए भी चक्षुहीन बन, सुनते हुए भी बहरा बन और जागृत होते हुए भी जड़-रूप बन। जो जैसा कहे उसके साथ वैसा ही बोल। यही तत्त्वविद् का अभ्यास है ।। ४६ ।।

यथ सरस सिरि फोंल ना वेंच्री,
तथ सरु सकली पोन्य च्यन ।
मृग सृगाल गंड्य ज़लु हंसती,
ज़्यन ना ज़्यन तु तोंतुय प्यन ।। ४७ ।।

सरोवरे यत्र न सर्षपस्य
कणोऽपि मात्येव विचित्रमेतत् ।
विवर्धते तत्पयसा समस्तं
यावत्प्रमाणं खलु देहिजातम् ।। ४७ ।।*

(कैसी विडम्बना है कि) जो सरोवर चावल के एक दाने तक को अपने में समा नहीं सकता अर्थात् सुरक्षित नहीं रख सकता, उसी सरोवर के पानी से सबकी प्यास बुझती है। (मृग, शृंगाल, गैंडा और जलहस्ति आदि) सब इसी जल से उत्पन्न होते हैं और इसी में समा जाते हैं। (इस संसार में सब-कुछ नश्वर है) ।। ४७ ।।

यवु तुर व्रलि तिम अम्बर ह्यता,
खयौंद यवु गलि तिम आहार अन।
व्रयता सौं परव्यव्रारस प्यता,
व्रयनतन यि देंह वन कावन ।। ४८ ।।

शीतार्थं वसनं ग्राह्यं क्षुधार्थं भोजनं तथा।
मनो विवेकितां नेयमलं भोगानुचिन्तनैः ।। ४८ ।।*

ठंड दूर करने के लिए अम्बर (वस्त्र) धारण करे; क्षुधा मिटाने हेतु आहार ग्रहन कर ले। रे चित्त! किन्तु (जिससे तुझे आनंद की प्राप्ति हो) उस स्व और पर का विचार कर, चिंतन कर ले, नहीं तो अंत में तेरी यह देह वन्य कौओं का आहार बनेगी ।। ४८ ।।

यि यि करुम कौंरुम सु अरचुन,
यि रसनि व्यच्रोरुम ती मंथुर।
योंहय लोंगमो दिहस परचुन,
सुय यि परमु शिवुन तंथुर ।। ४९ ।।

करोमि यत्कर्म तदैव पूजा
वदामि यच्चापि तदेव मंत्रः।
यदेव चायाति तथैव योगाद्-
द्रव्यं तदेवास्ति ममात्र तन्त्रम् ।। ४९ ।।*

मैंने जो-जो कर्म किए वही मेरी अर्चना है, जो रसना (जीभ) से उच्चारित किया वही मेरे मंत्र हैं। देह से यदि कोई काम लिया तो वह था परिचय-प्रत्यभिज्ञा (यह ज्ञान कि परमेश्वर और जीवात्मा एक है); और वास्तव में, परम-शिव के तंत्र का सार भी यही है ।। ४९ ।।

यिह्य मात्रु रूप पय दिये,
यिह्य बार्‌यया रूप करि विशेश ।
यिह्य माया रूप अंति जुव ह्येये,
शिव छुय कूठ तु च्येन वोंपदेश ॥ ५० ॥

भार्यारूपेण या नारी, तर्पयेन्नरवासनाम् ।
मातृरूपेण सा नारी, वात्सल्यं वितनोति हि ।
विपरीता तु माया सा, प्राणानपहरिष्यति ।
शिवस्य दर्शनं न स्यादुपदेशं विचारय ॥ ५० ॥

(नारी की महिमा के सम्बन्ध में लल कहती है :—) मातृ-रूप में यह पय (दूध) पिलाती है, भार्या-रूप में विषय-वासना की तृप्ति करती है और अन्ततः माया रूप में प्राण हरण कर लेती है। शिव-प्राप्ति कठिन है, (रे मनुष्य !) इस उपदेश को तू सावधान होकर समझ ले ॥ ५० ॥

युस यि करुम करि प्यतरुन पानस,
अरजुन बरजुन बेयिस क्युत ।
अंति लागि रोस्त पुशिरुन स्वात्मस,
अदु यूर्‌य गछि तु तूर्‌य छुस ह्योत ॥ ५१ ॥

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं लभते फलम् ।
नान्यस्तु फलभागी स्यात् स्वात्मैव फलभुग्भवेत् ।
फलकामो न कुर्यान्निःस्पृहः कार्यमाचरेत् ।
अर्पयित्वात्मने सर्वं कल्याणं लभते परम् ॥ ५१ ॥

जो जैसा कर्म करेगा उसका वैसा फल उसे भुगतना पड़ेगा। दूसरे उसमें भागीदार नहीं हो सकते। मनुष्य को चाहिए कि वह निःस्पृह होकर कर्मफल को स्वात्म (परमात्मा) के ऊपर छोड़ दे। फिर जहाँ कहीं भी जाएगा वहाँ उसका हित होगा ॥ ५१ ॥

हे गौंरा परमेश्वरा,
बावतम च्रेय छुय अन्तर व्योंद।
दौंशवय वौंपदान कंदुपुरा,
हह कवु तुरुन तु हा हा कवु तौंत ॥ ५२ ॥

गुरो ममैतमुपदेशमेकं
कुरुष्व बोधाप्तिकरं दयातः।
हाः - हूः इमौ स्तः सममास्यजाता-
वुष्णोऽस्ति हाः किमथ हूः सुशीतः ॥ ५२ ॥*

हे मेरे गुरु-परमेश्वर ! आप अन्तर्यामी (सर्वज्ञ) हैं, अतः मुझे जरा यह समझाइए कि श्वास-प्रश्वास दोनों भीतर से उद्भूत होते हैं, मगर फिर भी हा ! हा ! गर्म क्यों और हू ! हू ! शीतल क्यों ? ॥ ५२ ॥

सौंय शिल पीठस तु पटस,
सौंय शिल छय प्रथिवोन देश।
सौंय शिल शूबुवुनिस ग्रटस,
शिव छुय क्रूठ तु च्रेन वौंपदेश ॥ ५३ ॥

यथा शिलैकैव स्वजातिभेदात्
पीठादिनानाविधरूपभागिनी।
तथैव योऽनन्ततया विभाति
कष्टेन लभ्यं शृणु तं गुरोः शिवम् ॥ ५३ ॥*

जो शिला पीठ (चौकी) में लगी है, वही सड़क पर भी है। जो शिला पृथ्वी-तल पर है वही शिला चक्की में भी शोभायमान है। (मूल-तत्व एक है पर स्वरूप भिन्न-भिन्न दिखते हैं) इसी प्रकार शिवत्व का ज्ञान भी कठिन है, (रे मनुष्य !) इस उपदेश को तू सावधानी पूर्वक समझ ले ॥ ५३ ॥

रव मतु थलि थलि ताप्यतन,
ताप्यतन वौतम देश ।
वरुन मतु लूकु गरु अंच्रयतन,
शिव छुय कूठ तु च्रेन वौपदेश ॥ ५४ ॥

स्थले स्थले स्वैः किरणैर्यथा रविः
पतत्यभेदेन गृहेषु वाऽभ्रियम् ।
जलं तथा सर्वजगद्गृहेषु
कष्टेन लभ्यं शृणु तं गुरोः शिवम् ॥ ५४ ॥*

क्या यह संभव है कि रवि थल-थल को अर्थात् प्रत्येक स्थल को तापित (प्रकाशित) न कर केवल कुछ उत्तम (गिने-चुने) देशों (स्थलों) को ही तापित (प्रकाशित) करे। इसी प्रकार क्या यह संभव है कि वरुण (जल देव) प्रत्येक घर में प्रवेश किये बिना रह सकें। (अर्थात् जिस प्रकार सूर्य और वरुण बिना भेदभाव के सभी प्राणियों के लिए हितकारी हैं उसी प्रकार शिव भी सब का है, सब के लिए है।) बस, उसको समझना ज़रा कठिन है, यह उपदेश (बात) रे मनुष्य ! तू जान ले ॥ ५४ ॥

राजस बांज्य यैम्य करतल त्यांज्य,
स्वरगस बांज्य छुय तफ तांय दान ।
संहजस बांज्य यैम्य गौरु कथ पांज्य,
पापु पौन्य बांज्य छुय पनुनुय पान ॥ ५५ ॥

यः खड्ग-हस्तः स लभेत राज्यं
करोति पुण्यं लभते स नाकम् ।
गुरूपदेशे शिवदर्शनं स्यात्
नरो हि हेतुर्निज-पाप-पुण्ययोः ॥ ५५ ॥

जिसने तलवार उठाई वह राज्य का भागीदार बना। जिसने तप और दान किया वह स्वर्ग का भागीदार बना। जिसने गुरुपदेश को आत्मसात् कर लिया वह सहज (परमात्म-दर्शन) का भागीदार बना। (दरअसल, इस संसार में) पाप-पुण्य के कारणों का भागीदार मनुष्य स्वयं है ॥ ५५ ॥

राज़ु हमुस आंसिथ सपदुख कौंलुय,
कुसताम च्रौंलुय क्याहताम ह्यथ ।
ग्रटु गव बंद तय ग्रटन ह्यौंत गौंलुय;
ग्रटु वोल च्रौंलुय फल फौंल ह्यथ ।। ५६ ।।

भूत्वापि त्वं राजमरालरूपः
कथं स्वतः सम्प्रति मूकतां गतः ।
कः सारमादाय गतस्त्वदीयं
यस्मान्निरुद्धं तव प्राणचक्रम् ।। ५६ ।।

(अंतकाल आने पर) राजहंस के समान होने पर भी (रे मनुष्य !) तुम गूंगे हो गये । जाने कौन तेरे भीतर से क्या लेकर भाग गया ! तेरी (जीवन रूपी) चक्की रुककर बंद हो गई और चक्कीवाला (अन्नादि के सदृश) चैतन्य रूपी फल लेकर भाग गया ।। ५६ ।।

लल बो द्रायस कपसि पोशिचि संज़ुय,
कांड्य तु दून्य कंरनम यंज़ुय लथ ।
तुयि यॆलि खारिनम जांविजि तुये,
वोवुर्य वानु गंयम अलांज़ुय लथ ।। ५७ ।।

कार्पास-पुष्प-कलिका-तुलनां दधाना
लल्लाहमत्र जगति प्रमुदा प्रफुल्ला ।
हा हन्त ! तत्र निष्पीडन-चक्र-पिष्टा ।
पश्चाच्च चर्मतन्त्री-ध्वननेन ध्वस्ता ।। ५७ क ।।

कणशो जर्जरा जाता पीड़ा-पीड़ित-दुर्भगा ।
कुविन्दस्य गृहं प्राप्ता तन्त्रवाये विलम्बिता ।। ५७ ख ।।

मैं लल उसी उमंग और चाव के साथ इस संसार में खिली थी जिस उमंग और चाव के साथ कपास के डण्ठल से फूल खिलता है । परन्तु बेलने की रगड़ और पिंजयारे (धुनिये) की धुनकी ने मेरी खूब गत बनाई और बारीक बनाते-बनाते मेरा कण-कण उखाड़ डाला । फिर जुलाहे के यहाँ पहुँचकर (करघे पर) मैं लटक गई ।। ५७ ।।

लाचारि बिचारि प्रवाद कोरुम,
नदोर छुवु तु हेंयिव मा ।
फीरिथ दुबारु जान क्याह वोनुम,
प्रान तु रुहुन हेंयिव मा ।। ५८ ।।

असूचयं करुणस्वरेण जीवान्
क्रेयं वृथा नश्वर-विश्व-पण्यम् ।
चेत्क्रीणने प्रीणनमात्मनस्ते
क्रेयाणि भो ! मानव-मानसानि ।। ५८ ।।

लाचार और बेचारा होकर मैंने आर्त्त पुकार की कि यह संसार अस्थिर है, इसे खरीदने की कोशिश मत करना। (अर्थात् इसमें मत फँसना)। साथ ही यह भी पुकारा कि खरीदना है तो प्राणियों के प्राणों (दिलों) को खरीद लो ! ।। ५८ ।।

वाख मानस कोंल अकोंल ना अते,
छोंपि मुदरि अति ना प्रवेश ।
रोज़ान शिव शेखुथ ना अते ।।
मोंतियय कुँह तु सुय वोंपदेश ।। ५९ ।।

वाङ्मानसं च तन्मुद्रे शिवशक्ती कुलाकुले ।
यत्र सर्वमिदं लीनमुपदेशं परं तु तत् ।। ५९ ।।*

(रे मनुष्य !) वह (परमशक्ति) वाणी, मन तथा कुलीनता-अकुलीनता की सीमाओं से परे है। मौन-मुद्राओं का भी वहाँ प्रवेश नहीं है। शिव और शक्ति भी वहाँ रहते नहीं हैं। (इन सबके अतिरिक्त) तुम्हारे पास जो शेष बचा है, वही परमोपदेश है।। ५९ ।।

शिव शिव करान हमसु गथ सोंरिथ,
रूज़िथ व्यवहार्य द्यन क्योंह राथ ।
लागि रोंस्त अदुय युस मन कंरिथ,
तंस्य न्यथ प्रसन सुरु गोंरु नाथ ॥ ६० ॥

शिवं जपन्तो हृदि हंसगत्या
दिवानिशं ये परियापयन्ति ।
कुर्वन्त आसक्ति-विहीन-स्वान्तं
तेषु प्रसन्नः सुरनाथ-शङ्करः ॥ ६० ॥

शिव-शिव करते (जपते) तथा हंस गति (सोऽहम्) का ध्यान करते हुए जो दिन-रात व्यवहारी (गृहस्थ, संसारी) बना रहे और जो अपने मन को लाग रहित व द्वैत-शून्य बनाये, उसी पर सुरगुरुनाथ (परम शिव) नित्य प्रसन्न रहते हैं ॥ ६० ॥

शिव वा कीशव वा जिन वा,
कमलज़ुनाथ नाम दारिन यियुह ।
मे अबलि कास्यतन बवुरुज़ ॥
सु वा, सुवा, सुवा, सु ॥ ६१ ॥

शिवो वा केशवो वापि जिनो वा द्रुहिणोऽपि वा ।
संसाररोगेणाक्रान्तामबलां मां चिकित्सतु ॥ ६१ ॥*

(चाहे वे) शिव कहलाएँ, केशव कहलाएँ या जिन (तीर्थंकर) कहलाएँ। या फिर कमलजनाथ (ब्रह्मा) नाम धारण कर लें। चाहे वे कुछ भी कहलाएं, मुझ अबला को भवरुज (सांसारिक दुःखों) से मुक्ति दिला दें ॥ ६१ ॥

सिद्ध मालि सिदो सेंद कथन कन थव,
चे दोंह पथ कालि सोरन क्याह।
बालको तोंह्य क्यथो द्यन राथ बंरिव,
काल आव कुठान तु कंरिव क्याह ॥ ६२ ॥

गुरुवर्य ! धैर्यविधुरा विरहे त्वदीये
रात्रिंदिवं कथमतो परियापयेम।
कालस्य वीक्षण-क्षणे करवाम किंवा
बाला वयं किमपि बोधय बोधरूप ॥ ६२ ॥

हे सिद्धमौल गुरुजी ! मेरी सीधी-सी बात पर कान धरना। आपके बाद हम बालक अपने दिन-रात कैसे गुजारेंगे? काल हमारी कठिन परीक्षा लेगा और भला तब हम क्या करेंगे? ॥ ६२ ॥

ह्यथ कंरिथ राज फेरिना,
दिथ कंरिथ त्रपती ना मन।
लूब व्यना ज़ीव मरिना,
ज़ीवंत मरि तांय सुय छुय ग्यान ॥ ६३ ॥

लब्ध्वापि राज्यं नहि तुष्टमन्तस्
त्यक्त्वापि राज्यं नहि शान्तिमेति।
लोभं विना नैव मृतिर्जनस्य
लोभं जहीतीह विवेकवृत्तिः ॥ ६३ ॥

(यह कैसी विडंबना है कि) राज्य (ऐश्वर्य के साधन) पाकर व उसका उपयोग करने पर भी मन तृप्त नहीं होता और राज्य त्यागने पर भी मन को संतुष्टि नहीं होती। (दरअसल, लोभ ऐसी चीज़ है कि) बिना लोभ के जीव मरता नहीं है (लोभ उसके साथ लगा रहता है) जीते जी मनुष्य मर जाए, वह इच्छा-लोभ को मार दे, यही ज्ञान की बात है ॥ ६३ ॥

हा मनशि ! क्याजि छुख वुठान सेंकि लूर,
अमि रटि हामालि पकी नु नाव ।
ल्यूखुय यि नारान्य करमुनि रुखि,
ति मालि हेंकी नु फिरिथ काँह ॥ ६४ ॥

त्वं कथं सिकता-रज्जु-निर्माणे निरतो नर !
नातस्ते जीवनस्येयं नौका पारं गमिष्यति ।
ललाटे कर्मरेखां यामदान्नारायणः स्वयम्,
न सा साधनशून्यस्य लोपं यास्यति दुर्जया ॥ ६४ ॥

रे मनुष्य ! तू क्यों रेत की रस्सी बनाता (बटता) है ? इससे, रे भले मानस ! तेरी जीवन-नैया पार नहीं लग सकती । नारायण ने तेरी जो कर्म (भाग्य)-रेखा खींची है, वह कभी फिर (बदल) नहीं सकती ॥ ६४ ॥

अंंदरी आयस च्रंंदरुय गारान,
गारान आयस हिह्यन हिह्य ।
च्रुय हय नारान, च्रुय हय नारान,
च्रुय हय नारान, यिम कम विह्य ॥ ६५ ॥

चन्द्रमन्वेषमाणाऽहमन्तस्तो बहिरागता,
बहिरन्तर्न भेदोऽस्ति, त्वं नारायण ! दृश्यसे ।
सर्वत्र दर्शनं विष्णोः, सर्वगस्त्वं निरीक्ष्यसे,
नारायण ! विचित्रेयं लीलादेवी विराजते ॥ ६५ ॥

(ध्यान-योग में स्थित होकर) मैं अन्दर से (सब को प्रकाशित करनेवाले) चन्द्र को ढूँढते-ढूँढते बाहर आ गई । (अर्थात् अंतर्जगत् से बहिर्जगत् में आ गई) । (इस प्रक्रिया में) मैंने भीतर-बाहर दोनों को एक-जैसा पाया । दरअसल, हे नारायण ! तू ही सर्वत्र दिखा है मुझे । हे नारायण ! तू ही सर्वत्र दिखता है मुझको ! हे नारायण ! तेरी यह अद्भुत लीला कैसी विचित्र है ! ॥ ६५ ॥

अकुय ओमकार यस नाबि दरे,
कुम्बुय ब्रह्मांडस सुम गरे।
अख सुय मंथुर च्यतस करे,
तस सास मंथुर क्याह करे ॥ ६६ ॥

आ ब्रह्माण्डं नाभितो येन नित्य-
मोंकाराख्यो मन्त्र एको धृतोऽयम् ।
कृत्वा चित्तं तद्विमर्शैकसारं
किं तस्यान्यैर्मन्त्रवृन्दैर्विधेयम् ॥ ६६ ॥*

जो मात्र ऊँकार को नाभिस्थान में (ध्यानपूर्वक) धारण कर ले तथा कुम्भक (प्राणायाम की एक अवस्था) से उसे ब्रह्माण्ड तक पहुँचा दे और केवल इसी एक मंत्र (यानी ऊँ के जाप) को याद कर ले, उसे अन्य सहस्र मंत्रों (को याद करने) की क्या आवश्यकता है ? ॥ ६६ ॥

अछ्यन आय तु गछुन गछे,
पकुन गछे द्यन क्यो राथ।
योरय आय तु तूर्य गछुन गछे,
कोंह नतु कोंह नतु कोंह नतु क्याह ॥ ६७ ॥

जराऽऽगता क्षीणतरोऽद्य देहो
जातोऽवसायो गमनाय कार्य ।
समागताः स्मो यत एव तत्र
गन्तव्यमेवेह दृढं न किञ्चित् ॥ ६७ ॥*

(अनादि काल से) अविच्छिन्न गति से हम (इस संसार में) आते रहे और (यहाँ से) जाते रहे। (आवागमन का) यह चक्र दिन-रात चलता रहा है और चलता ही रहेगा। (रे मनुष्य !) तू अब यह प्रयत्न कर कि जहाँ से तू आया है, वहीं चला जा। (वहाँ से मुड़कर न आ)। (आवागमन के इस चक्र से) तुझे कुछ-न-कुछ सीख ले लेनी चाहिए ॥६७॥

शिव गुर ताय कीशव पलुनस,
ब्रह्मा पायद्यन वौलुस्यस।
यूगी यूगु कलि परज़ान्यस,
कुस दीव अशवु वारु प्यठ चड्यस ॥ ६८ ॥

शिवोऽश्वः केशवस्तस्य पर्याणमात्मभूस्तथा।
पादयन्त्रं तत्र योग्यः सादी क इति मे वद ॥ ६८ ॥*

शिव घोड़ा है और केशव काठी तथा ब्रह्मा पायदान की शोभा बढ़ा रहा है। केवल योगी योग-बल से पहचान सकता है कि कौन-सा देव इस अश्व पर चढ़कर सवारी कर सकता है! ॥ ६८ ॥

अनाहथ ख सौरूफ शुन्यालय,
यस नाव नु वरुन नु गुथुर तु रूफ।
अहम विमरशि नादु बिन्दुय यस वोन,
सुय दीव अश्वु वारु प्यठ चड्यस ॥ ६९ ॥

अनाहतः खस्वरूपः शून्यस्थो विगतामयः।
अनामरूपवर्णोऽजो नादबिन्द्वात्मकोऽस्ति सः ॥ ६९ ॥*

अनाहत-ओइम् जिसकी ध्वनि है, शून्य जिसका स्वरूप है (अर्थात् शून्यालय जिसका वास है), जिसका न नाम, न वर्ण, न गोत्र और न रूप है। आत्म-विमर्श से जिसे नाद-बिन्दु आदि का ज्ञान है, वही देवता (योगशक्ति वाला शहसवार) निर्गुण रूपी घोड़े पर चढ़कर सवारी कर सकता है ॥ ६९ ॥

अब्यास्य सविकास्य लयि वौथू,
गगनस सगुन म्यूल सभि छटा ।
शुन्य गौल अनामय मौतू,
यौहय वौपदीश छुय बटा ॥ ७० ॥

अभ्यासेन लयं नीते दृश्ये शून्यत्वमागते ।
साक्षिरूपं शिष्यते तच्छान्ते शून्येऽप्यनामयम् ॥ ७० ॥*

अभ्यास अर्थात् योगाभ्यास द्वारा जब विस्तार-विकास का लयीकरण हो जाता है यानी बहिर्जगत् और अन्तर्जगत् एक हो जाते हैं, तब सगुण (ब्रह्माण्ड) और गगन (शून्य, निर्गुण) एक दिखने लग जाते हैं तथा शून्य भी नाम-शेष हो जाता है। बचा रहता है मात्र अनामय (रोग, शोक, उपाधि विहीन) शिव तत्त्व। हे पंडित! यही एक उपदेश है ॥७०॥

आमि पनु सौंदरस नावि छस लमान,
कति बोजि दय म्योन में ति दियि तार ।
आम्यन टाक्यन पोन्य ज़न शमान,
ज़ुव छुम ब्रमान गरु गछ़हा ॥ ७१ ॥

निस्सार-सूत्रेण विकर्षयन्ती, नावं स्वकीयां भवसागरादहम् ।
परं न जाने हि निभालयेत् कदा, पारं परं प्रापयति ह्यदीश्वरः ।
नो चेद् वृथा मे श्रम एव, नीरं यथाऽविपक्वेहिशरावपात्रे ।
तथापि गन्तुं प्रिय-सद्म सत्वरा सुविह्वला तत्र कदानु प्राप्नुयाम् ॥७१॥

कच्चे धागे से मैं अपनी नैया को भवसागर से खींचकर ले जा रही हूँ। जाने कब मेरे देव (ईश्वर) मेरी सुनेंगे और मुझे पार लगाएँगे। (मेरा यह परिश्रम वृथा जा रहा है) वैसे ही जैसे कच्चे मिट्टी के सकोरों में पानी टिकता नहीं है बल्कि सोख जाता है। मगर, इतना सब होते हुए भी मेरा जी मचल रहा है कि अपने घर (परमधाम) को चली जाऊँ ॥ ७१ ॥

ओमकार येंलि लयि ऑनुम,
वुह्मय कोंरुम पनुन पान।
शेंवोंत त्रांविथ सथ मारुग रोंटुम,
तेंलि लल बों वांत्रुस प्रकाशस्थान ।। ७२ ।।

ओङ्कारमात्मसात्कर्तुं कायं प्रेमाग्निनाऽदहम् ।
अतीत्य योगषण्मार्गान्, सप्तमं मार्गमास्थिता ।
लल्लाहं तदा प्राप्ता, प्रकाश-स्थानमुत्तमम् ।
दुर्लभं लब्धमस्माभिः कथञ्चित्शाश्वतं पदम् ।। ७२ ।।

ऊंकार को अपने में लय करने के लिए मुझे अपनी काया को (प्रेमाग्नि में) तपाना पड़ा। (योग के) छः मार्ग पार कर सातवाँ मार्ग (सहस्रार) पकड़ा और तब कहीं जाकर मैं 'लल' प्रकाश-स्थान तक पहुँच सकी ।। ७२ ।।

ग्यानु मारुग छय हाकुवांर,
दिज़्यस शमु दमु कें्रयि पांन्य।
लामा च्रंकरु पोंश कें्रयि दांर,
ख्यनु ख्यनु मोंज़्री वांरुय छेंन्य ।। ७३ ।।

बोधस्य वाटिकां सिञ्च, शम-सत्कर्मवारिणा ।
पूर्वार्जित कर्मभारोऽयं नश्येद् बलिपशुर्यथा ।
अन्यथा नाशयेदस्या, वाटिकाया मनोज्ञताम् ।
स एव पशुरागत्य शीघ्रं कार्या विचारणा ।। ७३ ।।

ज्ञान-मार्ग एक शाक-वाटिका है, (रे मनुष्य ! तू) इसे शम-दम और सत्कर्मों का पानी पिला। इस प्रकार तेरे पूर्व कर्मों का भार उस पशु की बलि की तरह चुक जाएगा जो साग-पात खाकर देवी की भेंट चढ़ जाता है। अन्यथा खा-खाकर एक दिन वाटिका में कुछ भी शेष न रहेगा ।। ७३ ।।

च़रमन च़ंटिथ दितिथ पंन्य पानस,
त्युथ क्याह् वव्योथ तु फलिही सोव।
मूडस वोंपदेश गंयि रींज़्य दुमटस,
कंन्य दांदस गोर आपरिथ रोव ॥ ७४ ॥

चर्मणा कृतवान् रोधं, शरीरं शङ्कु-कीलितम् ।
न लब्धं फल-माधुर्यं बीजस्य वपनं विना ।
यथा प्रासादशिखरे स्वल्पलोष्ठस्य क्षेपणम् ।
यथा वृषाय गुडदानं, तथा ते बोधनं वृथा ॥ ७४ ॥

अपने चर्म को काटकर तूने (रे मनुष्य !) अपने चारों ओर शरीर में खूँटे गाड़ दिए (कठोर साधना से अपने को कष्ट पहुँचाया) पर तूने अपने भीतर ऐसा कोई बीज नहीं बोया जिससे तुझे कुछ फल मिलता। अब तुझे समझाना वैसे ही निरर्थक है जैसे गुंबज पर कंकर फेंकना या बैल को गुड़ खिलाना ॥ ७४ ॥

अंसी आस्य तु अंसी आसव,
असी दोर कंर्‌य पतु वत।
शिवस सोरि नु ज़्योंन तु मरुन,
रवस सोरि नु अत गत ॥ ७५ ॥

पूर्वमास्म भविष्यामः पश्चादपि वयं सदा।
अनादिकालाच्चंक्रमणं चर्यते न समाप्यते।
शिवरूपस्य जीवस्य जननं मरणं तथा।
तथा सूर्यस्य गमनं गगने न गमिष्यति ॥ ७५ ॥

पहले भी हम ही थे और आगे भी हम ही होंगे। हमने ही अनादि काल से दौरे किये (चक्कर काटे)। शिव का जीना-मरना कभी समाप्त न होगा और न ही सूर्य का आना-जाना समाप्त होगा ॥ ७५ ॥

त्रिदा नंदस ग्यानु प्रकाशस,
यिमव च्यून तिम ज़ीवंत्य मौखुत।
विशेमिस समसारनिस पाश्यस,
अबोद्य गंडाह शेंत्य - शेंत्य दित्य ।। ७६ ।।

चिदानन्दो ज्ञानरूपः प्रकाशाख्यो निरामयः ।
यैर्लब्धो देहवन्तोऽपि मुक्तास्तेऽन्येऽन्यथा स्थिताः ।। ७६ ।।*

जिनको चिदानंद और ज्ञान के प्रकाश की अनुभूति हो गई वे जी कर भी मुक्त हैं। (किन्तु जिनको यह अनुभूति नहीं हुई) वे अबोध (मूर्ख) संसार के विषमपाश में सौ-सौ गाँठों के समान उलझते जाते हैं ।। ७६ ।।

छांडान लूछुस पान्य पानस,
छैपिथ ग्यानस वोतुम ना कूंछ।
लय करमस तु वात्रुस अलथानस,
बंर्य बंर्य बानु तु च्यवान नु कूंह ।। ७७ ।।

स्वात्मान्वेषणयत्नमात्रनिरता श्रान्ता ततोऽहं स्थिता
तज्ज्ञानैकमहापदेऽतिविजने प्राणादिरोधात्ततः ।
लब्ध्वानन्दसुरागृहं च तदनु दृष्ट्वात्र भाण्डान्यलं
पूर्णान्येव तथापि तत्र विमुखः प्राप्तो जनः शोचितः ।।७७।।*

उसे ढूँढते-ढूँढते मेरा तन-मन थक गया पर उस परम-ज्ञान को प्राप्त न कर सकी। जब मैं अपने 'स्व' में लय हो गई तब 'अलथान' अर्थात् ज्ञानरूपी मधुशाला में पहुँच गई जहाँ (मधु से) बर्तन भरे पड़े हैं पर पीता कोई नहीं है ।। ७७ ।।

ज़ल थमुवुन हुतुवा तुरुनावुन,
ऊरगव मन पयरिव चरिथ ।
काठु देनि दौंद श्रमावुन,
अनति सकौल कपटु चरिथ ।। ७८ ।।

नीरस्तम्भो वह्निशैत्यं तथैव
पादैस्तद्वद्व्योमयानमशक्यम् ।
दोहो धेनोः काष्ठमय्यास्तथैव
सर्वं चैतज्जृम्भितं कैतवस्य ।। ७८ ।।*

बहते हुए जल को थामना, अग्नि को बुझाना, पैरों द्वारा ऊर्ध्वगमन (भूमि से ऊपर उठकर आकाश-मार्ग की ओर वायु में चलना), काठ की धेनु से दूध निकालना—ये सभी अन्ततः कपट-चरित हैं। (योग से चमत्कार दिखलाने वालों पर व्यंग्य) ।। ७८ ।।

ज़ानुहा नाडिदल मन रंटिथ,
चंटिथ, वंटिथ, कुटिथ, कलेश ।
ज़ानुहा अदु अस्तु रसायन गंटिथ,
शिव छुय कूठ तु चेन वौपदीश ।। ७९ ।।

अज्ञास्यं वशीकर्तुं यदि नाडी - दलं तदा,
नश्येत् क्लेशः समर्था स्यां निर्मातुं रसायनम् ।
दुष्करा शङ्कर प्राप्तिरिति मे निश्चिता मतिः,
इदानीमिममुपदेशं, सावधानतयाशृणु ।। ७९ ।।

यदि मैं नाड़ि-दल को वश में करना जानती, यदि यह जानती कि उसे कैसे काटूँ और समेटूँ, तो मेरा क्लेश मिट जाता और मुझे रसायन घोटने (आत्म-ज्ञान) का अनुभव हो जाता। शिव को पाना कठिन है, (रे मनुष्य ! तू) यह उपदेश सावधानी पूर्वक सुन ले ।। ७९ ।।

ज़ननि ज़ायाय रुत्य ताय कंती,
कंरिथ वोंदरस बहू कलेश।
फीरिथ द्वार बज़नि वात्य तंती,
शिव छुय क्रूठ तय ज़ेन वोंपदेश ॥ ८० ॥

प्रसूदरं क्लेशयुतं विधाय
जातो मलात्कोऽप्यनुयाति सन्ततम्।
यत्प्रेरितः सौख्यधिया नरः स्त्रियं
कष्टेन लभ्यं शृणु तं गुरोः शिवम् ॥ ८० ॥*

जननी से तू भला-चंगा जन्मा यद्यपि (तूने) उसके उदर (गर्भ) को बहुत क्लेश पहुँचाया। (वयस्क होने पर) तू फिर उसी द्वार की प्रतीक्षा करने लगा (कैसी विडंबना है!) शिव को पाना कठिन है, (रे मनुष्य! तू) यह उपदेश सावधानी पूर्वक सुन ले ॥ ८० ॥

तंथुर गलि ताय मंथुर मोंच़े,
मंथुर गोंल ताय मोंतुय च्यथ।
च्यथ गोंल ताय कोंह ति ना कुने,
शून्यस शून्या मीलिथ गव ॥ ८१ ॥

तन्त्रं सर्वं लीयते मन्त्र एव
मन्त्रश्चित्ते लीयते नादमूलः।
चित्ते लीने लीयते सर्वमेव
दृश्यं द्रष्टा शिष्यते चित्स्वरूपः ॥ ८१ ॥*

तंत्र (शास्त्र सम्मत तत्त्वांकन) निष्क्रिय सिद्ध हुआ तो मंत्र (जप-तप योगादि) सामने आया। मंत्र भी गला (निष्क्रिय सिद्ध हुआ) तो मात्र चित्त (चिन्मय तत्त्व) शेष रहा। चित्त भी जब मिट गया तो कहीं कुछ भी न रहा— शून्य के साथ शून्य मिल गया ॥ ८१ ॥

दमादम कोंरमस दमन हाले,
प्रज़ल्योम दीफ तु ननेयम ज़ाथ।
अंदर्युम प्रकाश न्यबर छ्रोंटुम,
गटि रोंटुम तु कंरमस थफ ॥ ८२ ॥

ततः प्राणादिरोधेन
प्रज्वाल्य ज्ञानदीपिकाम् ।
स्फुटं दृष्टो मया तत्र
चित्स्वरूपो निरामयः ॥ ८२ ॥*

(कुंभक द्वारा) मैं प्रतिपल दम (प्राण वायु) का निरोध करती रही। इस (अभ्यास) से मेरे अन्तर में ज्ञान रूपी दीप प्रज्वलित हुआ और मुझे अपनी असली ज़ात (स्थिति) का पता चल गया। तब अन्तर्प्रकाश को बाहर फैला दिया और उस (प्रकाश में प्राप्त सत्य) को मैंने दृढ़ता से थाम लिया ॥ ८२ ॥

द्वादुशांतु मंडल यस दीवस थजि,
नासिकु पवनुदार्य अनाहतु रव।
सौयम कलपन अनति व्रजि,
पानय सु दीव तु अरचुन कस ॥ ८३ ॥

यो द्वादशान्ते स्वयमेव कल्पिते
सदोदिते देवगृहे स्वयं स्थितः ।
संप्रेरयन् प्राणरविं स शंकरो
यस्यात्मभूतः स कमर्चयेद् बुधः ॥ ८३ ॥*

जिसने द्वादशमण्डल (ब्रह्मरंध्र) को देवस्थान मान लिया हो, जिसने नासिक्य-पवन (प्राणायाम) से अनाहत स्वरूप को अनुभूत कर लिया हो, जिसके मन की सारी कल्पनाएँ (सांसारिक इच्छाएँ) दूर हो गई हों—वही तो देव है फिर भला वह किसका अर्चन करे!'॥ ८३ ॥

दमन बसति दितो दम,
तिथय यिथु दमन खार ।
शेंसतुरस सोंन गछी हासिल,
वुनि छय सुल तु छांडुन यार ॥ ८४ ॥

लौहकारेण तुल्यस्त्वं
धम प्राणान् स्वभस्त्रया ।
लौहे स्वर्णोपलाब्धिस्स्यात्
समयेऽभीष्टं विवेचय ॥ ८४ ॥

(रे मनुष्य ! तू) अपनी धौंकनी (फुंकनी) में हवा भर ले (योग साध ले), वैसे ही जैसे लुहार फूंकता है। ऐसा करने से लोहे में (तुझे) सोना हासिल होगा। अभी समय है, तू अपने इष्ट (यार) को ढूंढ ले ॥ ८४ ॥

प्रान तु रुहुन कुनुय ज़ोनुम,
प्रान बंज़िथ लबि नु साद ।
प्रान बंज़िथ कोंह ति नो खोंज़े ।
तवय लोंबुम सूहम साद ॥ ८५ ॥

प्राणापानसमानादी-
नैक्ये सम्यगवेदिषम् ।
तान्निरुध्यापरोनापि
सोऽहं-स्वाद मवाप्नुयात् ॥ ८५ ॥

मैंने प्राण और रुहन अर्थात् अपान, समान आदि को एक ही जाना। इन प्राणों के रहस्य को जानकर विधिपूर्वक उनका निरोध करने पर दूसरे मनुष्य भी क्यों न सोऽहम् रूपी स्वाद (आनंद) को प्राप्त करें ? ॥ ८५ ॥

पवन पूरिथ युस अनि वगि,
तस बों ना सुपरशि न बोंछि तु त्रेश ।
ति यस करुन अंति तगि,
समसारस सुय ज़ेंयि नेंछ ।। ८६ ।।

यः पूरकेण चित्तं स्वं
रोधयेत्क्षुत्तृडादिकम् ।
न पीडयति संसारे
सफलं चास्य जीवितम् ।। ८६ ।।*

जो पवन को पूरक (भीतर-बाहर खींचकर अर्थात् प्राणायाम) द्वारा नियंत्रित करे, उसको न भूख स्पर्श कर सकती है और न प्यास। जो अंत तक यह विधि अपनाये संसार में उसी का जीना सार्थक है ।। ८६ ।।

यि क्याह आसिथ यि कुस रंग गोम,
संग गोम च़्रंटिथ हुदहुदने दिगे ।
सारेंन्य पदन कुनुय वखुन प्योम,
ललि मे त्राग गोम लगु कमि शाठय ।। ८७ ।।

कीदृगासीत् शरीरं मे, साम्प्रतं कीदृशं गतम् ।
प्रस्तरप्राय-हृदयं, कृन्तं हुद-हुद-पक्षिणा ।
तदा सम्पूर्णशास्त्रस्य, सार-सूत्रं समागतम् ।
तैलान्तराले निर्भिन्नो, बहन्माऽमृतनिर्झरः ।। ८७ ।।

(स्वात्म-बोध में) मेरे शरीर के रंग का हाल क्या से क्या हो गया ! (आत्म-चिंतनरूपी) हुद-हुद (पक्षी-विशेष) की ठूंगों ने संग (पत्थर) जैसे मेरे हृदय को काट डाला। सभी पदों (वेद-शास्त्रादि) का सार एक ही सूत्र में सामने आ गया और मुझ लल के भीतर अमृत का सोता फूट पड़ा। अब सोच रही हूँ कि उस में कहीं बह न जाऊँ ।। ८७ ।।

यिमय शॆ च्रें तिमय शॆ मे,
श्यामु गला च्रें व्यन तांट्स ।
यॊहोय ब्यन अंबीद च्रे तु मे,
च्रु श्यन सांमी बो शॆंयि मुशुस ।। ८८ ।।

यदेव षट्कं ते देव
तदेव च मम प्रभो ।
नियोक्ता त्वं नियोज्याहं
तस्यास्तीत्यावयोर्भिदा ।। ८८ ।।*

हे श्यामगला (नीलकंठ) ! जिन छः (उपाधियों) से आप युक्त हैं, उन्हीं छः (उपाधियों) से मैं भी युक्त हूँ । बस, आपमें और मुझ में यदि कोई भेद है तो वह यह है कि आप छः के स्वामी हैं और मेरे छः मुझे लूट गए हैं । [यहाँ पर छः उपाधियों से तात्पर्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर अथवा पंचेन्द्रियाँ व मन से है] ।। ८८ ।।

नांबिस्थानु छय प्रकरथ ज़लुवुनी,
हिडिस ताम यॆती प्रान वतुगोंत ।
ब्रह्मांडस प्यठु छय नंद्य वहवुनी,
हह तवु तुरुन तु हाहा तवु तोंत ।। ८९ ।।

नाभ्युत्थितो हाः जठराग्नितप्तो
हूः द्वादशान्ताच्छिशिरात्समुत्थः ।
हाः प्राणभूतोऽस्त्यथ हूः अपानः
सिद्धान्त एवं मुनिभिः प्रदिष्टः ।। ८९ ।।

नाभिस्थान की प्रकृति में (जठराग्नि) जलती रहती है और वहीं से कंठ तक प्राण-वायु ऊपर आती है । ब्रह्मांड (शीर्षस्थल) में (प्राणापान रूपी) नदी प्रवाहमान है, इसीलिए हह ठंडा और हा-हा गर्म है ।। ८९ ।।

शॆ वन च्रंटिथ शॆशि कल वुज़ुम,
प्रकरथ हॊन्ज़ुम पवुनु सूती ।
लोलुकि नारु वांलिज बुज़ुम,
शंकर लॊबुम तमी सूती ।। ९० ।।

कामादिकं काननषट्कमेत-
च्छित्त्वामृतं बोधमयं मयाप्तम् ।
प्राणादिरोधात् प्रकृतिं च भक्त्या
मनश्च दग्ध्वा शिवधाम लब्धम् ।। ९० ।।*

छः वन (शक्ति के छः चक्र) लाँघकर मैंने शशिकला को जगाया (अर्थात् सांसारिक बन्धनों को जब मैंने योगादि क्रियाओं से वश में कर लिया तब उस चन्द्रकला तक पहुँची जो परम-शिव का स्थान है) इसके लिए मुझे पवन (प्राणायाम) द्वारा अपनी प्रकृति को सुखाना पड़ा और प्रेमाग्नि (देवानुराग) से अपने कलेजे को भूनना पड़ा। तब कहीं जाकर मैं अपने शंकर को पा सकी ।। ९० ।।

शील तु मान छुय पोन्य क्रॆंजे,
मॊछि यॆम्य रॊट मंल्य यॊद वाव ।
हॊस युस मसवालु गंडे,
ती यस तगि तांय सु अदु निहाल ।। ९१ ।।

शीलस्य मानस्य च रक्षणं भटै-
स्तैरेव शक्यं निपुणं विधातुम् ।
वायुं करेणाथ गजं च तन्तुना
यैः शक्यते स्तम्भयितुं सुधीरैः ।। ९१ ।।*

(रे मनुष्य ! सत्य-अन्वेषण के समक्ष) शील और मान का विचार टोकरी में जल भरने के समान (व्यर्थ) है। हाँ, जो वायु को मुट्ठी में कर सके तथा हाथी को एक बाल से बाँध सके—जिसे यह करना आये, वह अवश्य निहाल (आत्मज्ञान से समृद्ध) हो जाएगा ।। ९१ ।।

समसारस आयस तपसुय,
बौंदि प्रकाश लौंबुम संहज़ु ।
मर्यम नु कुँह मरु नु कांसि,
मरु नेंछ तु लसु नेंछ ॥ ९२ ॥

आसाद्य संसारमहं वराकी
प्राप्ता विशुद्धं सहजं प्रबोधम् ।
म्रिये न कस्यापि न कोऽपि मे वा
मृतामृते मां प्रति तुल्यरूपे ॥ ९२ ॥*

संसार में मैं तप करने को आई और बुद्धि-प्रकाश से सहज (स्वात्म-बोध) को पा लिया। (देशकाल, माया-मोह आदि के बंधनों से मैं मुक्त हो चुकी) न मेरा कोई मरेगा और न मैं ही किसी के लिए मरूंगी। (स्थिति ऐसी हो गई है कि) मरूँ तो वाह ! जीवित रहूँ तो वाह ! (स्वात्म-बोध जीवन और मृत्यु की सीमाओं से परे है) ॥ ९२ ॥

संज़सस नु सातस पंज़सस नु रुमस,
सौंमस मे ललि पननुय वाख ।
अंदर्युम गट्‌कार रंटिथ तु वौंलुम,
च्रंटिथ तु ह्युतमस तती चाख ॥ ९३ ॥

बालाग्रं सूचिकाग्रं वा
नाहं पश्चाद्वर्तिनी ।
अन्तस्तमो गृहीतं तन् ।
मया दीर्णं क्षणान्तरे ॥ ९३ ॥

सूई के नोक व बाल जितना भी मैं कभी (परमात्म-प्राप्ति के लिए) पीछे न रही। मैंने अपने अन्दर के अन्धकार को पकड़ लिया और पकड़कर उसे चाक कर डाला। (अर्थात् तन्मय होकर मैंने अपने भीतर अज्ञान रूपी अंधकार को समाप्त कर डाला) ॥ ९३ ॥

संहज़स शम तु दम नो गछ़े,
येंछ़ि नो प्रावख मुख्ती द्वार।
सलिलस लवन ज़न मीलिथ गछ़े,
तोति छुय दोरलब संहज़ु व्यछ़ार॥ ९४॥

स्वभावलब्धौ न शमोऽस्ति कारणं
तथा दमः किं परं विवेकः।
नीरैकरूपं लवणं यथा भवेत्-
तथैकताप्तावपि नैष लभ्यः॥ ६४॥*

सहज (आत्मबोध) शम और दम से प्राप्त नहीं होता और न ही मात्र इच्छा से मुक्ति-द्वार को पाया जा सकता है। सलिल में लवण घुल भी जाए तो भी सहज-विचार दुर्लभ है। (अर्थात् जीव और परमात्मा के तादात्म्य से तब तक कोई लाभ नहीं है जब तक कि सर्वशक्तिमान परम ब्रह्म का जीव पर अनुग्रह न हो)॥ ९४॥

अथु मबा त्रावुन खरबा,
लूकु हुंज़ कोंगुवार खेंयी।
तति कुस बा दारी थर बा,
येति नंनिस करतल पेंयी॥ ९५॥

गर्दभोऽयं वशीकार्यः,
खादेत् केसर-वाटिकाम्।
त्वयि दण्डस्वरूपेण,
करवालः पतिस्यति॥ ६५॥

(रे मनुष्य!) अपने हाथ से इस (मन रूपी) गधे को न जाने दे। (इसे वश में रख) यह (मूर्ख) लोगों की केसरवाटिका खा जाएगा और फिर तुझे दण्डस्वरूप तलवार की मार सहनी पड़ेगी॥ ९५॥

गाफिलो हुकु कदम तुल,
वुनि छय सुल छांडुन यार।
पर कर पादा परवाज़ तुल,
वुनि छय सुल तु छांडुन यार॥ ९६॥

त्वरस्व चरण-न्यासे
शेषः कालोऽयमल्पकः।
मार्गयस्व सखायं स्व-
मुड्डीनं कुरु पक्षिवत्॥ ९६॥

रे गाफिल! तू तेज कदमों से चल। अभी भी समय है, अपने यार को ढूँढ। तू पँख पैदा कर और परवाज़ कर। अभी भी समय है, अपने यार को ढूँढ॥ ९६॥

गाल गंड्यन्यम बोल पंड्यन्यम,
दंप्यन्यम ती यस यि रूच़े।
संहज़ु कुसमव पूज़ कर्यन्यम,
बों अमुलांन्य तु कस क्याह मूच़े॥ ९७॥

निन्दन्तु वा मामथ वा स्तुवन्तु
कुर्वन्तु वार्चां विविधैः सुपुष्पैः।
न हर्षमायाम्यथ वा विषादं
विशुद्धबोधामृतपानस्वस्था॥ ९७॥

चाहे कोई मुझे गाली दे या बुरा-भला कहे। जिसे जो रुचे, मुझे कहे। चाहे तो कोई मेरी सहज कुसुमों से पूजा करे। मगर इस सब का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि मैं अमलिन हूं॥ ९७॥

च़्यथ नौवुय च़ंदुरमु नौवुय,
ज़लुमय ड्यूठुम नवम नौवुय।
यनु प्यठु ललि मे तन मन नोवुय,
तनु लल बो नवम नंवुय छस ॥ ९८ ॥

शरीरमन्तः परिमार्जितं यदा,
लल्लापि नव्या नवमेवसर्वम्।
अन्तर्गतां जलमयीं प्रकृतिं च चित्तं,
चन्द्रं च चारुकिरणं गगने व्यपश्यम् ॥ ९८ ॥

चित्त नया और चन्द्रमा भी नया। भीतर की जलमय प्रकृति को भी नित्य नया ही देखा। जब से 'लल' ने तन-मन को मांजा तब से लल भी नयी की नयी ॥ ९८ ॥

च़्यथ अमरपथि थंव्यज़ि,
ति त्रौवुथ लगिय ज़ुड्य।
तति च़ु नो शींक्यज़ि सन्दार्यज़ि,
दौदु शुर्य तु कौछि नो मुड्य ॥ ९९ ॥

योजय मनोऽमरपथे कुपथं न गच्छेत्
शीघ्रं विधेहि स्ववशे न विभेहि किञ्चित्
मातुर्जहाति न हठी शिशुरङ्कमेत्य।
तद्वन्मनो भवति निग्रह-ग्रन्थि-हीनम् ॥ ९९ ॥

(रे मनुष्य ! तू) अपने चित्त को अमर-पथ पर लगा दे। यदि उसे खुला छोड़ देगा तो फिर पुनः (अमर पथ से) जुड़ेगा नहीं। उसको वश में करने से तू ज़रा भी संकोच न कर क्योंकि वह एक (हठी) शिशु है जो (दूध पीने पर भी माँ की) गोद से उतरने का नाम नहीं लेगा ॥ ९९ ॥

मनस सुत्य मनुय गोंडुम,
च्यतस रंटुम च्रोपार्य वग ।
प्रकृत्र सुतिय पोंरुश वोंलुम,
सर मे कोंरुम लंबुम वथ ॥ १०० ॥

मनोहि बद्धं मनसा सहैव
कविका गृहीता चल-चित्त-वाजिनः ।
आवेष्ट्य सम्यक् पुरुषं प्रकृत्या
विचारणाया लब्धः सुमार्गः ॥१००॥

मैंने मन को मन के साथ बाँध लिया और चित्त की लगाम चारों ओर से पकड़ ली । पुरुष को प्रकृति से आवेष्टित कर लिया तब मुझे चिंतन का मार्ग प्राप्त हुआ ॥ १०० ॥

च्रलु च्यता वोंदस बयि मोबर,
चोन च्रिथ करान पानु अनाद ।
च्रें को ज़नुन्य ख्योंद हरि कर,
कीवल तसुंदुय तारुक नाद ॥ १०१ ॥

रे चित्त ! चिन्तां न विधेहि स्वस्मिन्
चिन्तां त्वदीयां कुरुते महेश्वरः ।
ज्ञानं न ते शं स कदा विधास्यति
त्वं केवलं नाम गृहाण तस्य ॥१०१॥

रे चंचल चित्त ! तू हृदय में भय को न भर (ला) । तेरी चिंता तो स्वयं अनादि कर रहे हैं । तुझे क्या मालूम कि कब वे तेरी क्षुधा (इच्छा) पूरी करेंगे । तू तो केवल उसके नाद (नाम) का जाप करता जा ॥ १०१ ॥

च्यतु तौरुग गगनु ब्रमुवोन,
नंमीशि अकि छ्टंडि यूज़नु लछ।
चेतनि वगि बौंदि रंटिथ ज़ोन,
प्रान अपान संदारिथ पखुच ॥ १०२ ॥

चित्ताभिधः सर्वगतिस्तुरङ्गः
क्षणान्तरे योजनलक्षगामी ।
धार्यो बुधेन्द्रेण विवेकवल्गा-
नोदेन वायुद्वयपक्षरोधात् ॥१०२॥*

चित्त-रूपी तुरंग गगन में भ्रमण करने का आदी है (ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ व इच्छाएं करता है) तथा एक निमिष में लाखों योजन घूम आता है। जिसने बुद्धि और चेतनता (विवेक) रूपी लगाम से उसको वश में करना सीख लिया वही प्राण-अपान के चक्रद्वय को नियंत्रित करने में सफल होता है ॥ १०२ ॥

च्यतु तौरुग वगि ह्यथ रौटुम,
चेंलिथ मिलुविथ दशि नाड़ि वाव।
तवय शशिकल व्यगुलिथ वंछुम,
शुन्य शुन्याह मीलिथ गव ॥ १०३ ॥

नियन्त्रितः खलीनेन मया चित्त-तुरङ्गमः ।
बद्धो नाडिकायुक्त श्वास-प्रश्वास-रज्जुभिः ।
तदा शशिकला सम्यक्जाता पीयूषवर्षिणी ।
एवं शून्येऽमिलच्छून्यमभेदो जीव-ब्रह्मणोः ॥१०३॥

मैंने चित्तरूपी तुरंग को लगाम देकर थाम लिया। फिर दशनाड़ियों के श्वासोछ्वास के साथ उसको बाँध दिया। तब कहीं शशिकला पिघली और शून्य में शून्य मिल गया ॥ १०३ ॥

दौंब्य यैंलि छांवनस दौंब्य कनि प्यठ्य,
सज़ तु साबन मंछ्नम यंत्रुय ।
सुत्र्य यैंलि फिरनम हनि हनि कांत्रुय,
अद ललि मैं प्रांवुम परमु गथ ।। १०४ ।।

पूर्वं फेनिल-मेलनेनरजको मां प्रस्तरेऽपोथयत् ।
पश्चात् सौचिक-कर्तरी-कृतसिता गात्रेष्वहं समभवम् ।
एवं साधनशोधिता तनुरभूद् योग्या प्रियस्यार्पणे ।
धन्याऽहं निजजीवने दुर्लभां प्राप्तातु परमां गतिम् ।।१०४।।

(पहले) खूब साबुन और सोडा मलकर धोबी ने मुझे पत्थर पर पटक-पटक कर धोया । फिर दर्ज़ी ने मेरे अंग-अंग में कैंची फिराई और तब कहीं जाकर मैं परमगति पा सकी ।। १०४ ।।

पोंत ज़ूनि वंथिथ मोंत बोलुनोवुम,
दग ललुनावुम दयि सुंज़ि प्रहे ।
लंल्य लंल्य करान लालु वुज़ुनोवुम,
मीलिथ तस मन श्रोत्र्योम दहे ।। १०५ ।।

प्रातः प्रबुद्धा हि व्यबोधयं स्वं
परमार्थ-मार्गे चलमन्तरङ्गम् ।
ततः प्रियं श्रावित-लल्लनाम्ना
प्राबोधयं धन्यतमा हि जाता ।।१०५।।

(नित्य) रात्रि के अंतिम पहर में जागकर मैंने इस चंचल मन को बहुत समझा-बुझाकर परमार्थ की ओर प्रवृत्त किया । इस प्रक्रिया में मुझे अपार पीड़ादि सहनी पड़ी । 'मैं लल हूँ', 'मैं लल हूँ' कहकर मैंने अपने लाल (प्रिय इष्ट) को जगाया और फिर उससे मिलकर मेरी यह देह पवित्र हो गई ।। १०५ ।।

मनसाय मन बवसरस,
छ्वोर कूप नेरेंस नारुक छुख ।
लेंका लेंख योंद तुल कोंटि,
तुलि तूलु तु तुल ना केंह ॥ १०६ ॥

मन एव मनुष्याणां भवसागर उच्यते ।
वेला-विहीनादस्मात्तु दुर्वचोवडवानलः ।
निर्गतो ज्वलन-ज्वालासंघात मुद्वमिष्यति ।
तदा त्वं कृतयत्नोऽपि गणनाकरणेऽक्षमः ॥१०६॥

(रे मनुष्य ! तेरा यह) मन एक भव-सागर है। यदि इसे खुला छोड़ देगा (बाँधेगा नहीं) तो इसमें से गाली-गलौज (ईर्ष्या, द्वेष, वैर आदि) रूपी बड़वानल के फव्वारे छूटेंगे जिन्हें तू तोलना भी चाहे तो नहीं तोल सकता ॥ १०६ ॥

कामस सुतिय प्रय नो बंरुम,
क्रूदस द्युतुम पवनुन फेश ।
लूबस मूहस च्रन चंटिम,
त्रशना च्रंजिम गंयस खोंश ॥ १०७ ॥

कामं न कामये किञ्चित् क्रोधाग्निर्निर्वापिता ।
लोभस्य दुष्टमोहस्य चरणौ शातितौ मया ॥१०७॥क
एतावति कृते यत्ने तृष्णा निर्गता मम ।
तदाऽहं सर्वभावेन जीवने मुदिताऽभवम् ॥१०७॥ख

मैंने काम के साथ प्रीति नहीं रखी, क्रोध को पवन से बुझा दिया, लोभ और मोह के चरण काट डाले तब मेरी तृष्णा मिट गई और मैं खुश हो गई ॥ १०७ ॥

(म

यँम्य लूब मनमथ मद च्रूर मोरुन,
वति नांश्य मारिथ ति लोगुन दास ।
तंमी संहज़ु ईश्वर गोरुन,
तंमी सोरुय व्योंदुन स्वास ॥ १०८ ॥

यो मारयित्वा मद-लोभ-कामान्
अभिमानशून्यः प्रभु-दास एव ।
प्राप्तिस्तदाऽभूत् सहजेश्वरस्य
भूतिर्भवेद् भस्म-समानमेव ॥१०८॥

जिसने लोभ, मन्मथ (काम) और मद रूपी चोरों को मारकर उन्हें अपने रास्ते से हटा दिया तथा इतना-कुछ करने पर भी दास (निराभिमानी) बना रहा, उसने सहज-ईश्वर को पा लिया और फिर उसकी दृष्टि में सांसारिक सुख-वैभव राख समान हैं ॥ १०८ ॥

लंलिथ लंलिथ वदय बौं वाय,
च्रेता मुहुच पेंयी माय ।
रोज़ी नो पतु लोंह लंगरुच छाय;
निज़ु स्वरूप क्याह मोंठुय हाय ॥ १०९ ॥

रे चित्त ! रुद्यां त्वयि वार-वारम्
बद्धं त्वमस्मिन् दृढ-मोह-जाले ।
किञ्चिन्न यास्यति त्वया सह लोकवस्तु
किं विस्मृतं निजस्वरूपमनूपरूपम् ॥१०९॥

रे चित्त ! तुझपर फूट-फूट कर रोऊँ । तू (सांसारिक) मोह-माया में (बुरी तरह) उलझ जो गया । (तू शायद यह नहीं जानता कि अंतकाल में) यह लोह-लंगर (भौतिक सुख-वैभव) की छाया तक तेरा साथ न देगी । हा ! तू निज स्वरूप को क्यों भुला बैठा ? ॥१०९॥

लूब मारुन संहज़ु व्यचारुन,
द्रौंग ज़ानुन कलपन त्राव ।
निशि छुय तु दूर मो गारुन,
शून्यस शून्या मीलिथ गव ॥ ११० ॥

लोभं त्यक्त्वा वैमनस्यं च तद्वत्-
कार्यो नित्यं स्वस्वभावावमर्शः ।
शून्याच्छून्यं नैव भिन्नं यथैवं
तस्मात्त्वं तद्भेदबुद्धिर्वृथैव ॥११०॥*

(रे मनुष्य !) तू लोभ को मार (त्याग) दे और सहज (स्वात्म) का विचार कर। (उस परम-ब्रह्म को प्राप्त करना कोई सरल कार्य नहीं है) अपितु उसे एक महंगा सौदा जान। इसलिए कल्पनाएँ करना छोड़ दे। वह तो तेरे निकट है, उसे अपने से दूर न ढूंढ। वह शून्य के साथ मिल जाने के समान है ॥ ११० ॥

बुथि क्या जान छुख वौंदु छुय कंन्य,
असलुच कथ ज़ाँह संनिय नो ।
परान लेखान वुठ ओंगजि गंजिय,
अंद्रिम दुय ज़ाँह च्रंजी नो ॥ १११ ॥

दर्शने दर्शनीयस्त्वं,
हृदयं पाषाण-सन्निभम् ।
यत्र सत्याङ्कुरो नैव,
शास्त्राधीतो विभेददृक् ॥१११॥

दिखने को तो तेरा चेहरा बड़ा सुन्दर है किन्तु हृदय पत्थर के समान है, जिसमें सत्य की बात कभी समायी नहीं। पढ़ते-लिखते तेरे होंठ व उंगलियाँ घिस तो गई किन्तु तेरे अन्दर की दुय (द्वैत भावना) दूर नहीं हुई ॥ १११ ॥

हचिवि हांरिंजि प्यत्रिव कान गोम,
अबख छान प्योम यथ राजदाने ।
मंजबाग़ बाज़रस कुलुफ-रौंस वान गोम,
तीरथ-रौंस पान गोम कुस मालि ज़ाने ॥ ११२ ॥

अहो काष्ठ-धनुस्तत्र, शरः शष्पविनिर्मितः ।
निर्मातुं राजप्रासादं, कारुरज्ञः समागतः ।
यथा पण्यगृहं हट्टे यन्त्रकेण विनास्थितम् ।
शरीरं मामकं तद्वद् जानीयात्को मम स्थितिम् ॥११२॥

(भाग्य ने मेरे साथ खिलवाड़ किया) काठ के धनुष के लिए बाण मिला तो वह घास का। राजमहल के (निर्माण) लिए बढ़ई मिला तो वह भी मूर्ख। मेरी स्थिति तो बीच बाजार में ताले रहित दुकान जैसी हो गई है। देह मेरी तीर्थ-विहीन ही रही। मेरी यह विवशता कौन जान सकता है ! ॥ ११२ ॥

हा च्यता कवु छुय लोगमुत परमस,
कवु गोय अपज़िस पज़्युक ब्रोंत ।
नेंश-बोंज़ वश कोरनख पर-दरमस,
यिनु गछ़नु ज़्यनु मरनस क्रोंत ॥ ११३ ॥

रे चित्त ! कस्मादसि मोहमग्नं
जानासि सत्यं त्वमसत्यमेव ।
परधर्ममेत्य निजधर्म-विहीन ! मूढ !
तस्मात्पुनः पतति हा ! जन्मादि-चक्रे ॥११३॥

रे चित्त ! तू क्यों आसक्ति में पड़ा हुआ है ? क्यों झूठ में तुझे सच की प्रतीति होती है ? तू दुर्बुद्धि के कारण परधर्मी बन गया है (अपने धर्म से च्युत हो गया है) तभी तो आवागमन और जन्म-मरण के चक्कर में फंसा हुआ है ॥ ११३ ॥

तलु छुय ज्युस तय प्यठु छुख नच़ान,
वन तु मालि क्यथ पच़ान छुय ।
सोरुय सोंबरिथ येति छुय मोच़ान,
वन तु मालि अन क्यथु रोच़ान छुय ॥ ११४ ॥

निम्नस्थगर्तोपरि नृत्यकारिन्
कथं हि चित्तं रमतेऽत्र संगतम् ।
इहैव सर्वं परिहाय गच्छेः
कथं पुनस्ते स्वशनं हि रोचते ॥११४॥

तेरे नीचे खाई है और तू उसके ऊपर नाच रहा है। भला तेरा मन इस स्थिति से समझौता कैसे कर रहा है? सब कुछ इकट्ठा कर बाद में यहीं छोड़ देना है, (इस बात को जानते हुए भी) भला तुझे अन्न कैसे रुचता है? ॥ ११४ ॥

दिल किस बाग़स दूर कर गासिल,
अदु द्यवु फोलिय यंबुरज़ंल्य बाग़ ।
मंरिथ मंगनय वुमरि हुंज़ हासिल,
मोत छुय पतु पतु तहसीलदार ॥ ११५ ॥

चित्तोद्यानाद् यथाशीघ्रं कत्तृणं कुरु दूरतः ।
तदा हेमलतायाश्च प्रसरेत् पुष्प-सौरभम् ।
यत्कृतं जीवने किञ्चित्, तत्कृते मरणान्तरे ।
प्रश्नो विधास्यते सम्यक्, पश्चात्मृत्युर्गमिष्यति ॥११५॥

दिल के बाग़ से झाड़-झंखाड़ निकाल फेंक तब कहीं नरगिस के फूल उस बाग़ में खिलेंगे। मरने के बाद तुझसे, उम्र भर में तू ने जो हासिल किया है, उसका हिसाब मांगा जाएगा और मौत मानो तहसीलदार की तरह तेरा पीछा करेगी ॥ ११५ ॥

परान परान ज़्यव ताल फंजिम,
च्ये युग्य क्रय तंजिम न ज़ांह।
सुमरन फिरान म्योंठ तु ओंगजि गज्यम,
मनुच्य दुय मालि च्रंजिम नु ज़ाँह॥ ११६॥

अधीयाना चिरान्नाभूत, तव योग्या हि योग्यता।
अभूच्च सर्वथा दुःखम्, जिह्वा-तालु-विशोषणम्।
माला मावर्त मानाया, अङ्गुष्ठ-कर-वल्लरी।
छिन्ना जाता परं नैव, गता द्वैताभिभावना॥११६॥

पढ़ते-पढ़ते मेरी जीभ और तालु फट गये मगर तेरे योग्य कर्त्तव्य-विधि मेरी समझ में न आयी। सुमरनी (माला) फेरते-फेरते मेरा अँगूठा और उंगलियाँ गल गईं मगर मन की दुय (द्वैतभावना) फिर भी दूर न हुई॥ ११६॥

गोंरस प्रुछाम सासि लटे,
यस नु केंह वनान तस क्या नाव।
प्रुछान प्रुछान थंचिस तु लूसुस,
केंह नस निशि क्या ताम द्राव॥ ११७॥

सहस्रशो गुरुः पृष्टः
किं नामाज्ञातवस्तुनः।
मौनेनैवसमाज्ञप्ता,
सर्वं वाचामगोचरम्॥११७॥

गुरु से मैंने हज़ार बार पूछा कि जिसे 'कुछ नहीं' कहते हैं, उसका नाम क्या है? पूछते-पूछते मैं थक गई और मुरझा गई। (अंत में) मैं यही समझी कि 'कुछ नहीं' से ही कुछ न कुछ निकला है॥ ११७॥

ज्ञालुन छु वुज़मलु तु त्रटय,
ज्ञालुन छु मंदिन्यन गटुकार।
ज्ञालुन छु पान पनुन कडुन ग्रटय,
ह्यत मालि संतूश वाती पानय ॥ ११८ ॥

विद्युत्प्रहार-प्रतिमा क्षमा मता
रवौ स्थिते नश्यति सा तमो यथा।
आत्मार्पणं पेषण-चक्रिकान्तरे
सा दुर्लभा प्राप्स्यति तुष्टि सेवनात् ॥११८॥

सहनशीलता बिजली और गाज समान (कठोर परीक्षा व श्रम की वस्तु) है, सहनशीलता मध्यान्ह में अन्धकार के समान (असंभव सी बात) है। सहनशीलता अपने आपको चक्की में पीसने के समान है। (रे मनुष्य ! यदि तू) संतोष से काम ले तो वह (सहनशीलता) स्वयं मिल जाएगी ॥ ११८ ॥

लतन हुंद माज़ लार्योम वतन,
अंकिय हावनम अंकिचिय वथ।
यिम यिम बोज़न तिम कोनु मतन,
ललि बूज़ शतन कुनिय कथ ॥ ११९ ॥

अन्वेषणे मे पदमांस-लिप्तो-
मार्गस्तथाऽहं न गता स्वलक्ष्यम्।
एकेन पन्थाः स व्यदर्शि, मोदते,
यस्तस्य संज्ञां शृणुयात्कदाचित् ॥११६॥क

शतशः सारशून्येषु,
सारमेकं मयाधृतम्।
लल्लाऽहं न पुनर्भ्रान्ति,
गमिष्यामि जगत्पथे ॥११६॥ख

(घूमते-फिरते) मेरे तलवों का मांस सड़कों से चिपक गया अर्थात् सत्यान्वेषण के लिए मुझे खूब कष्ट उठाने पड़े। (अंत में) एक (आत्मज्ञान) ने मुझे मार्ग-दर्शन कराया। जो उस (एक) का नाम सुनेंगे वे भला मतवाले क्यों न हो जाएँ। लल ने सौ बातों में से एक बात सार की निकाल ली ॥ ११९ ॥

ट्योंठ मोंधुर तय म्यूठ ज़हर,
यस यूत छ्नुख जतन बाव ।
येम्य युथ कोरुय कल तु क़हर,
सु तथ शहर वातिथ प्यव ॥ १२० ॥

तिक्तं मधुर-तुल्यं भो ! मधुरं गरलायते ।
येनाऽऽस्वादितं कष्टं, मधुरं सुखमाप्यते ।
कृतमाराधनं येन, निष्ठया दृढया भृशम् ।
स एव सफलीभूतः स्वस्य लक्ष्यस्य प्रापणे ॥१२०॥

(कभी-कभी) कड़वा मीठा और मीठा ज़हर (समान कड़वा) होता है। (इसलिए रे मनुष्य !) जिसने जितना कष्ट सहा (कटुता को चखा) और एक निष्ठा से आराधना की, वह अपने उद्देश्य (मंतव्य) को प्राप्त करने में सफल हो गया ॥ १२० ॥

तन मन गंयस बो तस कुनुय,
बूज़ुम सतंच गंटा वज़ान ।
तथ जायि दारनायि दारन रंटुम,
आकाश तु प्रकाश कोरुम सरु ॥ १२१ ॥

मनसा कर्मणा वाचा निमग्ना ध्येय-चिन्तने ।
तदैव तस्य देवस्य ध्वनिः कर्णपथंगतः ॥१२१॥क
धारणा विधृता स्वान्ते सर्व-तत्व मवेदिषम् ।
गगनात्पातालपर्यन्तं स्थितस्य जगतस्तथा ॥१२१॥ख

जब तन-मन से मैं उसके ध्यान में खो गई तो मुझे सत्य की घण्टी बजती सुनायी दी। तब मैंने अपनी धारणा (शक्ति) को धारण (आत्मसात्) कर लिया और आकाश व पाताल (सर्वस्व) का रहस्य जान गई ॥ १२१ ॥

कतु छुख दिवान अनिने बछ़,
सुख अय छुख तु अंदरिय अछ़।
शिव छुय अंत्य तय कुन मो गछ़,
सहज कथि म्यानि कर तो पछ़ ॥ १२२ ॥

त्वमन्धवद् भ्राम्यसि लक्ष्यहीन-
स्तवान्तराले स्थित एव शंकरः।
नान्यत्र लभ्यं शिव-दर्शनं त्वया
विश्वासमातिष्ठ मदीयवाक्ये ॥१२२॥

(रे मनुष्य ! तू) क्यों अन्धे की तरह इधर-उधर टटोलता (हाथ-पाँव मारता) है। यदि तू बुद्धिमान है तो अन्दर की ओर उन्मुख हो जा। शिव वहीं पर हैं, अतः कहीं और न जा। मेरे इस सहज कथन पर तू विश्वास कर ॥ १२२ ॥

मूड़ो क्रय छय नु दारुन तु पारुन,
मूड़ो क्रय छय नु रछिन्य काय।
मूड़ो क्रय छय नु दीह संदारुन,
सहज व्यछारुन छुय वॊपदीश ॥ १२३ ॥

त्वदीय-कार्यं नहि काय-मार्जनम्
त्वदीय-कार्यं नहि काय-चिन्तना।
त्वदीय-कार्यं नहि कायभूषणं
त्वदीय-कार्यं सहजस्य चिन्तनम् ॥१२३॥

रे मूढ़ ! तेरा कर्तव्य सजना-सँवरना नहीं है। रे मूढ़ ! तेरा कर्तव्य अपनी काया की चिंता करना नहीं है। रे मूढ़ ! तेरा कर्तव्य अपनी देह को संभालना भी नहीं है। तेरे लिए तो सहज को विचारना ही उपदेश है ॥ १२३ ॥

लज़ कासी शीत न्यवारिय,
त्रन ज़ल करान आहार।
यि कंम्य वौपदीश कौरुय बटा,
अच़ीतन वटस सच़ीतन द्युन आहार ॥ १२४ ॥

स्वचर्मणा रक्षति ते शरीरं
करोति नित्यं तृण-वारि-भोजनम् ।
परोपदेशिन् किमु हंसि चेतन-
मचेतनस्योपरि प्रस्तरस्य ॥१२४॥

यह तेरी लज्जा को ढाँकता है (खाल, चमड़े आदि के रूप में), शीत से भी तेरी रक्षा करता है (ऊन आदि के रूप में) स्वयं तो (बेचारा) तृण-जल का आहार करता है। फिर यह उपदेश, रे पंडित ! तुझे किसने दिया कि अचेतन पत्थर पर तू इस चेतन बकरे को बलि चढ़ा ॥ १२४ ॥

दंछिनिस ओंबरस ज़ायुन ज़ानुहा,
सुदरस ज़ानुहा कंडिथ अठ।
मंदिश रूगियस वैद्युत ज़ानुहा,
मूडस ज़ानिम नु प्रनिथ कथा ॥ १२५ ॥

छेत्स्याम्यहं दक्षिण-जात-मेघान्
कर्तुं क्षमा सिन्धुजलस्य शोषणम् ।
विमोचनं शक्यमसाध्यरोगतः
न मूढमुद्बोधयितुं समर्था ॥१२५॥

दक्षिणी मेघों को भंग (छिन्न-भिन्न) भी कर सकती हूँ, सागर से जल को भी उलीच सकती हूँ, असाध्य रोग की चिकित्सा भी कर सकती हूँ किन्तु मूढ़ को (तत्त्वार्थ) नहीं समझा सकती ॥ १२५ ॥

अव्यंज्ञारी पोथ्यन छि हो मालि परान,
यिथु तोतु करान 'राम' पंजरस ।
गीता परान तु हीथा लबान,
परुम गीता तु परान छस ॥ १२६ ॥

पठन्ति ग्रन्थान् शुकवन्नरा वृथा
तथैव गीताऽध्ययन-प्रदर्शनम् ।
ज्ञानाय गीतामहमध्यगीषि
तथाप्यधीये न प्रदर्शनाय ॥१२६॥

अविचारी पोथियों (धर्मग्रन्थों) को वैसे ही पढ़ते हैं जैसे पिंजड़े में तोता 'राम-राम' रटता है। ऐसे लोगों के लिए गीता का पढ़ना मात्र एक बहाना (ढोंग है) गीता मैंने पढ़ी और पढ़ रही हूँ। (धर्म-ग्रन्थों के कथनों को पढ़कर उन्हें आतमसात् करना ज्यादा महत्वपूर्ण है)। ॥ १२६ ॥

परुन सौंलब पालुन दौरलब,
सहज़ गारुन सिखिम तु कूठ ।
अब्यासकि गनिरय शासतुर मौंठुम,
चीतन आनंद निश्चय गोम ॥ १२७ ॥

सुलभं हि पठनं नित्यं
दुर्लभं तस्य पालनम् ।
दुर्लभः सहजानन्दः
शास्त्रं विस्मृत्य प्राप्यते ॥१२७॥

पढ़ना सुलभ (आसान) है किन्तु उसका पालन करना दुर्लभ (कठिन) है। (इसी प्रकार) सहज (स्वातम) को खोजना भी दुष्कर है। अभ्यास के घने कुहरे में जब मैं सारे शास्त्र भूल बैठी तब मुझे चेतन-आनंद की प्राप्ति हुई ॥ १२७ ॥

मंदछि हांकल कर छ्यनैम,
यैलि ह्यडुन गेलुन असुन प्राव् ।
आरुक जामु कर सन दज़्यम,
यैलि अंदर्युम खार्युक रोज़्यम वारु ।। १२८ ।।

लज्जा विश्रृङ्खला तत्र सम्यग् भवितुमर्हति ।
अपशब्दान् यदा क्षन्तुं शक्तिरन्तर्जनिष्यते ।।१२८।।क
लज्जा-जवनिका लग्ना ज्वलिष्यति क्षणान्तरे ।
यदाहि मन्मनो-वाजी समायत्तो भविष्यति ।।१२८।।ख

लाज की साँकल तभी टूट सकेगी जब दूसरे के उलाहनों, हंसी-मज़ाक और अपशब्दों को सहने की मुझमें क्षमता आ जाएगी। दरअसल, लाज का यह पर्दा तभी जलेगा जब मेरे अन्तर्मन का स्वच्छंद घोड़ा मेरे वश में रहेगा ।। १२८ ।।

रुत तु क्रुत सोरुय पज़्यम,
कनन नु बोज़ुन अंछ्यन नु बाव् ।
ओरुक दपुन यैलि वोंदि वुज़्यम,
रतन दीप प्रज़ल्यम वरज़नि वावु ।। १२९ ।।

कर्णद्वयं मे नश्रृणोत्वभद्रं, नेत्र-द्वयं पश्यतु नो विरूपम् ।
सहै सदाऽहं प्रियमप्रियं वा, कदा भवेज्जीवन मीदृशं मे ।।१२९।।क
यदात्मनः कर्षणमुद् भविष्यति,
बाधाशतंयद् विलयं गमिष्यति
ममान्तरे निःस्व-प्रभञ्जनेऽपि,
रत्नप्रदीपो ज्वलितो भविष्यति ।। १२९ ।।ख

भला और बुरा मुझे समभाव से सहना है। कान मेरे न बुरा सुनें और आँखें मेरी न बुरा देखें। हृदय में मेरे जब उधर का आह्वान (स्वात्म का आह्वान) उद्बुद्ध होगा तब मेरे भीतर अकिंचनता के प्रभंजन में भी रत्नदीप प्रज्वलित होगा ।। १२९ ।।

ल्यकु तु थांकु प्यठ शेरि ह्यच्रम,
ग्यंदा सपनिम पथ ब्रोंठ ता़न्य ।
लल छ्यस कल ज़ाँह नो छ्यनिम,
अदु यॆंलि सपनिस व्यपिहे क्याह ॥ १३० ॥

तिरस्क्रिया थूत्कृतिरप्रसह्या,
मया शिरोधार्यकृता समन्तात्
न निन्दया लल्लजनस्य बाधा
पूर्णे हि कुम्भे न विशेत् किञ्चित् ॥ १३० ॥

मैंने गाली-गलौज और थूक-फटकार को शिरोधार्य कर लिया। मेरी निंदा तो आगे-पीछे हुई है और होती रहेगी। मगर इससे मुझ लल की एकाग्रता में कभी व्यवधान नहीं पड़ा क्योंकि मेरी उपलब्धियों का घर तो पहले से ही भरा पड़ा है, उसमें और कुछ भला कैसे समा सकता है ? ॥ १३० ॥

कंद्यो ! करख कंदि कंदे,
कंद्यो ! करख कंदि विलास ।
बूगय मीठि दितिथ यथ कंदे,
अथ कंदि रोज़ि सूर न तु सास ॥ १३१ ॥

त्वं चेत् तनुं चिन्तयसि प्रमुग्ध!,
शरीर-सज्जां वितनोषि नित्यम् ।
चिनोषि चेद् भोग-विलास-साधनं,
हा हन्त! सर्वं भस्मी भविष्यति ॥ १३१ ॥

रे मनुष्य ! यदि तू हमेशा अपने तन की चिंता करता रहेगा, तन की ही साज-सज्जा में खोया रहेगा, तन के लिए भोग-विलास के साधन जुटाता रहेगा, तो यह जान ले कि तेरी इस देह की कभी राख तक भी न बची रहेगी ॥ १३१ ॥

सोँमन गारुन मंज़ यथ कंदे,
यथ कंदि दपान सोँरूप नाव।
लूब मूह त्रलिय शब यियी कंदे,
यैँथ्य कंदि तीज़ तये सोर प्रकाश ॥ १३२ ॥

स्वस्मिन् गवेषय शिवंहि निजस्वरूपम्
कामादिदोषरहितं यदि मानसं ते
शोभिष्यते तवतनुर्विमला हि भानो
स्तेजस्विता विलसिता सर्वाङ्गमध्ये ॥ १३२ ॥

(रे मनुष्य !) तू अपने तन में ही सुमन (सच्चे मन) से उसे खोज जिसका तू स्वरूप है। तेरे मन से जब लोभ-मोह मिट जायेंगे तो तेरा यह तन सुशोभित होगा और तेज एवं सूर्य-प्रकाश से भास्वरित हो जाएगा ॥ १३२ ॥

नफसुय म्योन छुय होँस्तुय,
अंभ्य हंसत्य मोँगनम गरि गरि बल।
लछि मंज़ सास मंज़ अखा लोँसुय,
न तु ह्यतिनम सारिय तल ॥ १३३ ॥

लुब्धं मनो मे गजराज-तुल्यं
परीक्षते तत् प्रतिवासरं माम्।
मृद्नाति सर्वांस्तु सहस्र-मध्ये,
कश्चिन्नरस्तस्य भयाद् विमुच्यते ॥ १३३ ॥

मेरा यह लोभी-मन हाथी समान है। यह हमेशा मेरे बल की परीक्षा लेता रहा है। इसके प्रभाव से लाखों, हजारों में एकाध बचा हो तो हो, नहीं तो इसने सबको रौंध डाला है ॥ १३३ ॥

ख्यनु ख्यनु करान कुन नो वातख,
न ख्यनु गछ्ख अहंकारी ।
सोंमुय खें मालि सोंमुय आसख,
समि ख्यनु मुच्चरनय बरुन्यन तारी ॥ १३४ ॥

भोगैर्नकिञ्चित्परिलभ्यते नर !
भोगोपलब्धौ कुरुषेऽभिमानम्
समस्थितस्तर्पय करणजात,
मुन्मुक्तद्वारो हि जनिष्यसे मुदा ॥ १३४ ॥

(रे मनुष्य ! तू) खा-खाकर (अत्यधिक सुख-वैभव का भोग करने पर) कहीं का नहीं रहेगा और न खाने पर (अपनी इच्छाओं का नितांत शमन करने पर) अहंकारी बन जाएगा (तुझे अपनी उपलब्धि का दंभ हो जाएगा) इसलिए तू समरूप में (न ज़्यादा न कम) अर्थात् वांछित मात्रा में अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर, इसी सब विधि से तेरे बंद द्वार खुल जाएँगे ॥ १३४ ॥

कुस मरि तय कसू मारन,
मरि कुस तय मारन कस ।
युस हर-हर त्राविथ गरु गरु करे,
अदु सु मरि तय मारन तस ॥ १३५ ॥

को नाम मृत्योर्वशगो भविष्यति
कः कस्य हन्ता भ्रममात्रमेव
हरं-हरं यो विस्मृत्य ब्रूयाद्
गृहं-गृहं तस्य वधो भविष्यति ॥ १३५ ॥

कौन मरेगा और किसको मारा जायेगा ? मरेगा कौन और मारेंगे किसको ? जो हर-हर (भगवान) को भूलकर घर-घर करेगा, वही मरेगा और उसी को मारा जाएगा ॥ १३५ ॥

गौर शब्दस युस यछ पछ बरे,
ग्यानु वगि रटि च्यतु तौरगस ।
येंदरय शौंमिथ आनंद करे,
अदु कुस मरि तय मारन कस ।। १३६ ।।

यस्यास्ति श्रद्धा गुरुप्रोक्त-शब्दे
ज्ञानस्य वल्गा हय-चित्त-रोधे ।
वशे खजातं मुद् यस्य चित्ते,
न तस्य मृत्यु र्न च तस्य मारकः ।। १३६ ।।

जो गुरु-शब्द पर आस्था और श्रद्धा रखे, ज्ञानरूपी लगाम से अपने चित्तरूपी तुरंग को काबू में रखे, जो इन्द्रियों को वश में करके आनंद-भोग करे, वह भला कैसे मर सकता है और उसे भला कौन मार सकता है ? ।। १३६ ।।

रंगस मंज़ छुय ब्यौन ब्यौन लबुन,
सोरुय ज़ालख ब्रख तय सौंख ।
ज़ख रुश तु वांर गालख,
अदु डेशख शिव सुंद मौंख ।। १३७ ।।

नामानि रूपाणि बहूनि सन्ति,
विश्वस्य मञ्चे जगदीश्वरस्य ।
द्वन्द्वं सहिष्ये न करिष्यसे घृणाम्,
तदाहि ते शंकर-दर्शनं भवेत् ।। १३७ ।।

इस संसाररूपी रंगशाला में तुझे उस (ईश्वर) के विभिन्न नाम-रूप मिलेंगे । (इस वैभिन्न्य में उसे पा लेना ही बड़ी बात है) इसके लिए जब तू सुख-दुःख सह लेगा; घृणा, वैर, क्रोध आदि को मन से गला देगा तब तुझे शिवमुख के दर्शन होंगे ।। १३७ ।।

लोलुकि नारु ललि लौलि ललनोवुम,
मरनय मौयस तु रूज़ुस नु ज़रय,
रंग रैछि ज़ातुसुय क्याह नु रंग गोम,
बो दपुन च़ौलुम क्याह सन करे ॥ १३८ ॥

प्रेमाग्निक्रोडे तमलालयं यदा,
तदा मृताऽहं मरणात्पूर्वम्
जन्मक्षणे मे नहि जाति-रूप
महंविलीनेति नवीन-रूपम् ॥ १३८ ॥

प्रेम की अग्निरूपी गोदी में मैंने उसे (परम-तत्व को) डुलाया जिससे मरने से पूर्व ही मर गई। जन्मते समय तो मेरा न कोई रंग था और न कोई जाति किन्तु अब मेरे कई रंग हो गये हैं। 'मैं' कहना छूट गया, यह सबसे बड़ा रंग है ॥ १३८ ॥

त्रेशि बौछि मो क्रेशनावुन,
यान्य छ्ययि तान्य संदारुन दिह।
फ्रठ चोन दारुन तु पारुन,
कर वौपकारुन सौय छय क्रय ॥ १३९ ॥

न पीडयाऽङ्गं क्षुधया पिपासया,
निभालय त्वं परिक्षीण-देहम्।
अलंव्रतैर्बाह्यप्रदर्शनैरलं
परोपकारं कुरु मुख्य-कार्यम् ॥ १३९ ॥

(रे मनुष्य ! तू) प्यास व भूख के मारे अपनी देह को न तड़पा। जैसे ही यह बुझने लगे (थकने लगे) वैसे ही इसे संभाल ले। तेरे व्रतोपवास धारने और बाह्याडंबर पालने पर धिक्कार है। परोपकार कर, वही तेरा (परम) कर्त्तव्य है ॥ १३९ ॥

ज़नुम प्राविथ वयबव नो छोंडुम,
लूबनं बूगन बोरुम न प्रय ।
सोमुय आहार स्यठा ज़ोनुम,
च्रोलुम दोख-वाव पोलुम दय ॥ १४० ॥

लब्ध्वा जनिं परिहृता बहुभोगतृष्णा
लोभेन भोगेन समं न मैत्री
मतं मया तन्मितभोजनं तदा,
प्राप्तः प्रभुर्दूरगतं च दैन्यम् ॥ १४० ॥

जन्म पाकर मैंने (कभी) वैभव (ऐश्वर्य-भोग) को नहीं ढूंढा (कभी उसकी चाह नहीं की)। लोभ और भोग से प्रीति नहीं रखी। समाहार को ही पर्याप्त माना। ऐसा करने से मेरा दुःख-दैन्य दूर हुआ और दैव को अपना बना लिया ॥ १४० ॥

रावनु मंज़य रोवुम,
राविथ अथि आयस बवसरे ।
असान गिंदान सहज़ुय प्रोवुम,
दपुनुय कोरुम पानस सरे ॥ १४१ ॥

अहं विलीना स्वस्मिस्तथापि
विलीनभावस्य गतापि चेतना
विस्मृत्य सर्वं सहजं समागता,
ज्ञातोऽवबोधस्य शुभ-प्रकारः ॥ १४१ ॥

मैं (स्वात्म में इतना) खो गई कि यह भूल गई कि मैं खो गई हूँ तथा भवसागर में लीन हो गई। हँसते-खेलते मैंने सहज को प्राप्त कर लिया और इस प्रक्रिया को आत्मबोध का आधार बनाया ॥ १४१ ॥

लोलुकि वोखलु वालिज पिशिम,
कोकल च्रंजिम तु रूज़ुस रसु ।
बुज़ुम तु ज़ाजिम पानस चुशिम,
कवु ज़ानु तवु सुत्य मरु किनु लसु ।। १४२ ।।

प्रेमोलूखले सम्यक्, मया पिष्टं स्वमानसम्,
गता दुर्वासना शीघ्रं, शान्तभावेन संस्थिता ।
अग्नौ तद् हृदयं तप्त्वा, पश्चादास्वादितं मया,
न जाने कर्मणाऽनेन, मरणं वा जीवनं मम ।। १४२ ।।

प्रीति की ओखली में मैंने अपने हृदय को पीसा (कूटा) जिससे मेरी कुवासना मिट गई और मैं शांतभाव से रहने लग गई। पश्चात्, मैंने इस हृदय को भूना-पकाया और उसको चखा। अब मैं यह नहीं जानती कि ऐसा करने से मैं मर जाऊँगी या जीवित रह जाऊँगी ।। १४२ ।।

केंच्रन दितिथम गुलालु यंच्रुय,
केंच्रन ज़ोनुथ नु दिनस वार ।
केंच्रन छुनिथम नाल्य ब्रह्म हंच्रुय,
बगवानु चानि गंच्र नमस्कार ।। १४३ ।।

ददासि कस्मैचित्सुन्दरात्मजान्
किञ्चिन्न कस्मैचिद् यच्छसि त्वम्
हा, ब्रह्म-हत्या-सम-पुत्रिकाः क्वचिन्
नमामि भगवंस्तव चित्रलीलाम् ।। १४३ ।।

कुछ को तुमने कई गुलेलाला दिए (अर्थात् पुत्र ही पुत्र दिए) और कुछ को कुछ भी न देना उचित जाना। कुछ के गले ब्रह्म-हत्याएँ (पुत्रियाँ ही पुत्रियाँ) मढ़ दीं। हे भगवान ! तेरी (अपरंपार) गति को नमस्कार है ।। १४३ ।।

केंन्न द्युतथम ओरय आलव,
केंन्न रचायि नालय व्यथ।
केंन्न अंछ्य लजि मसच्यथ तालव,
केंन्न पपिथ गय हालव ख्यथ ॥ १४४ ॥

आहूतास्स्वयमेव केचिन्नराः— केचिद् वितस्तां रताः
केचित्ते मधुराभिधान-मदिरा मापीय मत्तास्तथा
तेषां दृष्टिरवस्थिता तव गृह प्रान्तोन्मुखी केचन
शलभा-भक्षित-नष्ट साधनकृषेः प्राप्ता न ते धामकम्॥ १४४ ॥

कुछ को (हे भगवान् !) तुमने स्वयं बुलाया (अर्थात् उन पर जन्म से ही ईश-कृपा हुई), कुछ ने वितस्ता नदी को गले लगाया (खूब संध्या-स्नान करने लगे) कुछ तुम्हारे नाम की हाला पीकर बौरा गये और उनकी नज़रें छत की ओर एकटक जम गईं और कुछ की पकी फसलें टिड्डियाँ खा गईं—तुम तक पहुँचते-पहुँचते भी रह गए ॥ १४४ ॥

केंन्न रंनि छय शिहिज बूनी,
केंन्न रंनि छय बर प्यठ हूनी।
केंन्न रंनि छय अदल त बदल,
केंन्न रंनि छय ज़दल छाय ॥ १४५ ॥

छायायुक्त चिनारवृक्षकल्पाः काश्चिद्भवन्त्यङ्गनाः,
केषांचित्प्रमदा भ्रमन्ति भुवने कौलेयवृत्ति गताः।
काश्चिच्चापल-चर्चिता नव-नवं पुरुषान्तरं कुर्वते,
काश्चिच्छाया-धर्म-कर्म-कुशलाः साहाय्य मातन्वते ॥ १४५ ॥

कुछ की रानियाँ (पत्नियाँ) छायादार चिनार के पेड़ समान होती हैं, कुछ की पत्नियाँ द्वार पर पड़ी कुत्तियां के समान होती हैं, कुछ की पत्नियाँ अदल-बदल करने (कहा न मानने) वाली होती हैं और कुछ की पत्नियाँ धूप-छाँह की तरह आवश्यकतानुसार सहायक सिद्ध होनेवाली होती हैं ॥ १४५ ॥

ग्रटु छु फेरान ज़ेरि ज़ेरे,
ओह कुय ज़ानि ग्रटुक छल।
ग्रटु येलि फेरि तय ज़ांव्युल नेरे,
गूं वाति पानय ग्रटु बल ॥ १४६ ॥

शनैः शनैश्चञ्चति चूर्णचक्रिका,तद्भेदविज्ञं वत मध्यकीलकम्
मन्दं चलेच्चक्रदलं यदा तदा, पिष्टं क्षरेत् सूक्ष्मतरं स्वचक्रतः
पतन्ति गोधूम कणाः स्वतस्ततो मध्ये शनैश्चक्रदलद्वये रहो।
एकं समालम्ब्य सुसाधनाया मचिन्त्यकष्टंलभते परंपदम् ॥१४६॥

चक्की का पाट धीरे-धीरे घूमता है किन्तु अक्ष (मानी-खूँटी) को छोड़ और कोई चक्की के घूमने के रहस्य को नहीं जानता। जब ऊपर का पाट घूमता है तो बारीक आटा निकलता और गेहूँ अपने आप पाटों के करीब आता जाता है। (अनवरत साधना और सहिष्णुता से परम उद्देश्य की प्राप्ति संभव है) ॥ १४६ ॥

शिव छुय ज़ांव्युल ज़ाल वाहरांविथ,
क्रंज़न मंज़ छुय तंरिथ क्यथ।
ज़िन्दु नय वुछहन अदु कति मंरिथ,
पान मंज़ु पान कड़ व्यच्रांरिथ क्यथ ॥ १४७ ॥

विस्तीर्य जालं जगति स्थितशिवो
व्याप्तः सदा सर्वशरीर मध्यगः
मृत्यौ स्थिते द्रक्ष्यसि किं, विवेकतो
निभालय त्वं प्रभुमन्तराले ॥ १४७ ॥

शिव अपना बारीक जाल बिछाये सर्वत्र व्याप्त है। देखो तो कैसे सबके शरीरों (अस्थि-पंजरों) में रच-पच गया है। यदि तू जीते जी उसको न देख सका तो क्या मर कर उसे देखेगा? विवेक और आत्म-चिंतन से काम ले और उसे अपने भीतर खोज निकाल ॥ १४७ ॥

शिव छुय थलि थलि रोज़ान,
मो ज़ान ह्योंद तय मुसलमान।
तुख अय छुख तु पान परज़ान,
सौ छय साहिबस सूत्य ज़ान ॥ १४८ ॥

स्थले स्थले शङ्कर एव राजते,
हिन्दू-तुरुष्केषु कथं विभेदः ?
प्रबुध्य स्वात्मान मवेहि सम्यक्
स परिचयस्ते हरिणा समं स्यात् ॥ १४८ ॥

शिव थल-थल पर (सर्वत्र) व्याप्त है। (अतः रे मनुष्य ! तू) हिन्दू और मुसलमान में भेद न जान। यदि तू प्रबुद्ध है तो अपने आपको पहचान, यही साहिब (भगवान्) से परिचय करने के बराबर है ॥ १४८ ॥

चुय दीवु गरतस तु दरती स्रज़ख,
चॆय दीवु दितिथ कंजन प्रान।
चुय दीव ठनि रौंस्तुय वज़ख,
कुरु ज़ानि दीव चोन परमान ॥ १४९ ॥

देव ! त्वमेव जगतीतल-जीवनस्य
स्रष्टा त्वमेव तस्मिन् कृतपञ्चप्राणः
त्वं शब्दशून्यो दुर्बोध देव !
तवैव सर्वत्र ध्वनिर्विराजते ॥ १४९ ॥

हे देव ! तुम ही इस जीवन और धरती (जगत्) के सृजक हो। तुम ही ने हे देव ! पंचभूतों में प्राण फूंके हैं। हे देव ! यद्यपि तुम ध्वनि-रहित हो किन्तु तुम्हारी ही ध्वनि हर जगह व्याप्त है। हे देव ! तुम्हारा प्रमाण (गति-अवगति) भला कौन जान सका है ? ॥ १४९ ॥

दीशि आयस दश दीशि च्रलिथ,
च्रंलिथ च्रोंटुम शुन्य अद् वाव ।
शिवुय ड्यूठुम शायि शायि मीलिथ,
शें तु त्रें व्रोपिमस तु शिवुय द्राव ॥ १५० ॥

चङ्क्रमणं दिक् चक्रेऽस्मिन् कृत्वा देशं स्वमागता,
विदीर्य झंझावातं च निर्जनं च महावनम् ।
पञ्चेन्द्रियाणि मनसा वशीकृत्य गुणत्रयम्,
व्यलोकयं शिवं व्याप्तं सर्वत्र जगतीतले ॥ १५० ॥

मैं दसों दिशाओं में घूम फिरकर अपने देश (अन्तर्जगत्) में लौट आई। इसके लिए मुझे जाने कितने शून्यों और तूफानों को भेदना पड़ा। जब छः (पंचेन्द्रियों व मन) और तीन (त्रिगुणों) को वश में कर लिया तो पाया कि शिव जगह-जगह (सर्वत्र) व्याप्त है ॥ १५० ॥

शुन्युक मांदान कोंडुम पानस,
में ललि रूज़ुम न बोंद नु होश ।
वेदो सपनिस पानय पानस,
अद् कमि हिलि फोंल ललि पंपोश ॥ १५१ ॥

शून्यं महामार्गं मपारयं यदा,
लल्ला तदाऽहं विस्मृत्य सर्वम्
लब्ध्वा स्वकीयानुभवं मदीया
स्थितिः स्थिता पङ्क विरूढकञ्जवत् ॥ १५१ ॥

जब मैंने शून्य के एक असीम मैदान (क्षेत्र) को पार किया तो मुझ लल को न बुद्धि रही और न होश। तब स्वात्म के भेद को पाकर मेरी स्थिति कीचड़ में उगे कमल जैसी हो गई ॥ १५१ ॥

मिथ्या असथ कपट त्रोवुम,
मनस कौरुम सुय वौपदीश।
ज़नस अंदर कीवल ज़ोनुम,
अनस ख्यनस कुस छुम द्वीश ॥ १५२ ॥

असत्य-मिथ्याचरणादि हेयं,
मयोपदिष्टं निजमानसं यदा।
जने-जने केवल मेव दृष्टं,
व्यर्थं तदाऽभूदुपवासकष्टम् ॥ १५२ ॥

मैंने मिथ्याचार, असत्य व कपट को त्यागने का अपने मन को उपदेश दिया तथा प्रत्येक जन में उस 'केवल' को व्याप्त जाना। अतः फिर अन्न खाने से द्वेष क्यों रखूँ (व्रतोपवास क्यों करूँ)। (व्रतोपवास से अधिक महत्त्वपूर्ण है मन को शुद्ध रखना) ॥ १५२ ॥

शिशरस वुथ कुस रटे,
कुस बौंके रटे वाव।
युस पांछ यँदरिय च्यलिथ च्रटे,
सुय रटे गटे रव ॥ १५३ ॥

शिशिरे बर्षतो मेघान्, कः पुमान् वारणे क्षमः
समीरवेगं कः कुर्यात्, स्वकीये मुष्टिबन्धने
पञ्चेन्द्रियाणि संयन्तुं, समर्थः स्यात्तु कश्चन,
अन्धकारे रविं बद्धुं, समर्थः स्यात्तदा नरः ॥ १५३ ॥

शिशिर में बरसनेवाले पानी को भला कौन रोक सका है? वायु को भला कौन मुट्ठी में बाँध सका है? जो अपनी पाँच इन्द्रियों को वश में कर सका वह अन्धकार में भी रवि को पकड़ सका ॥ १५३ ॥

सिहनी हुंद शिकार पांज़ कवु ज़ाने,
हांठ कवु ज़ाने पोंतरय दोद।
शमुहुच्य कदुर लंश कति ज़ाने,
मंछ्य कति जाने पोंपुर्य गथ ॥ १५४ ॥

सिंहीवधं किं कुर्याच्छशादनो
बन्ध्या न जानाति प्रसूतिपीडाम्
नहि काचदीपस्य तुला ह्यलातके
न मक्षिकायां शलभस्य योग्यता ॥ १५४ ॥

सिंहनी का शिकार करना भला बाज़ क्या जाने? बाँझ भला पुत्र-पीड़ा क्या जाने? शमा की कद्र भला मशाल क्या जाने और शलभ की गति भला मक्खी क्या जाने? ॥ १५४ ॥

लंराह लंज़ुम मंज़ मांदानस,
अंद्य अंद्य कंरिमस तंकियि तु गाह।
सों रोज़ि येंत्य तय बों गछु पानस,
वोन्य गव वानस फालव दिथ ॥ १५५ ॥

अकारि गेहं शुभ-सज्जितं परं,
विचिन्तितं हा! तदिहैव हास्यते।
अहं गमिष्यामि तथैव सर्वथा,
यथा वणिक् पण्यगृहं पिधास्यति ॥ १५५ ॥

बीच मैदान में मैंने एक मकान बनाया। उसको चारों ओर से अच्छी तरह सजाया-सँवारा। (मगर, अफसोस!) वह मकान यहीं रह जाएगा और मैं चली जाऊँगी मानो दुकानदार दुकान बंद करके चला जाए ॥ १५५ ॥

सोंयि कुल नो दोंद् सुति संगिज़े,
सरपिनि ठूलन दीज़ि नो फाह ।
स्यकि शाठस फल नो वंविज़े,
रावुरिज़ि नु कोंम याज्यन तील ।। १५६ ।।

सिञ्च नो कदापि त्वं, पयसा वृश्चिकौषधिम्,
सर्पिण्या नाण्डमासेव, न वापं वालुका-सृतौ ।
बुसस्य शाक-निर्माणे न तैलं नाशयेत् सुधीः,
दुःखवृद्धिर्भवेद् येन, न कुर्यात् तद् विचारवान् ।। १५६ ।।

बिच्छू बूटी को दूध से कभी सींचना नहीं, सर्पिणी के अंडों को कभी सेना नहीं, बालू के सेतु पर कभी बीज बोना नहीं तथा भूसी के रोटले (खताई) पर कभी तेल बर्बाद करना नहीं ।। १५६ ।।

मूडस ग्यानुच कथ नो वंनिज़े,
खरस गोर दिनु रावी दोंह ।
युस युथ करे सु त्युथ सोंरे,
क्रेरे कंरिज़ि नु पनुन पान ।। १५७ ।।

मूढाय नोपदेष्टव्यं, गर्दभाय गुडार्पणम्,
यथाकर्म तथा भोगस्तत्रात्मानं न पातयेत् ।। १५७ ।।

मूढ़ को ज्ञान की बात कभी कहना नहीं, गधे को कभी गुड़ खिलाना नहीं । जो जैसा करेगा सो वैसा भरेगा, तू व्यर्थ अपने को कुएँ में ढकेलना नहीं ।। १५७ ।।

आरस नेरि नु मोंदुर शीरय,
निरवीरस नेरि न शूरा नाव।
मूरखस प्रनुन छुय हंस्यतिस कशुन,
यसो मालि दांदस ब्यहा ज्ञाव ॥ १५८ ॥

मधूरसो रक्तफलान्न लभ्यते,
न कातरः शूर पदेन शस्यते,
न मूर्खबोधः प्रगुणाय कल्पते,
वीर्येण हीनो वृषभो निरर्थकः ॥ १५८ ॥

आलूबुखारे से कभी मीठा रस निकलेगा नहीं, निर्वीर्य का नाम कभी शूर कहलाएगा नहीं, मूर्ख को समझाना हाथी को खुजलाने के समान (व्यर्थ) है वैसे ही जैसे आलसी बैल से काम लेना कठिन है ॥ १५८ ॥

बबरि लंगस मुशुक नो मरे,
हूनि बस्ति कोफूर नेरि नु ज़ाँह।
मनु यींद ग्वारुहन फेरिय ज़ेरे,
न तु शालुटुंगे नेरिय क्याह ॥ १५९ ॥

लतायां बबरिख्यातायां सुगन्धो राजते सदा,
सारमेये न लभ्येत, कर्पूरामोदमाधुरी।
ध्यान-मग्नमना भूत्वा, तन्मार्गणरतो भव,
भविष्यति शिव प्राप्तिः, शृगाल-भषणेन किम् ॥ १५९ ॥

रेहान (पुष्प-विशेष) की लता से कभी सुगंध नहीं जाती और कुत्ते की खाल से कभी कर्पूर की सुवास नहीं आती। (रे मनुष्य ! तू) यदि ध्यान-मग्न होकर उसको ढूंढे तो तुझे परमशिव की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा गीदड़ की तरह चिल्लाने से कोई लाभ नहीं है ॥ १५९ ॥

आयस ति स्योंदुय तु गछु ति स्योंदुय,
सेंदिस हौल मे कर्‌यम क्याह ।
बो तस आसुस आगरय व्यंज़ुय,
व्यदिस तु व्यंदिस कर्‌यम क्याह ।। १६० ।।

समागता सरलमनास्तथैव,
गन्तास्म्यहं सरलस्वभावरक्ता
किं मे करिष्यति शठः शिवज्ञातभावा,
किंवा शिवोऽपि कुर्यान्मम निर्भयायाः ।। १६० ।।

मैं सीधी ही आई थी और सीधी ही जाऊंगी भी (अर्थात् जन्म से ही मैंने सरल स्वभाव अपनाया और अन्तकाल तक इसी सरल स्वभाव को अपनाऊँगी) मुझ सीधी को भला टेढ़ा (शठ स्वभाववाला) क्या करेगा ? वे (परब्रह्म) तो मुझे प्रारंभ से ही जानते-पहचानते हैं अतः मुझ जानी-पहचानी का वे भी भला क्या कर सकेंगे ? (अर्थात् अपनी सहज सरलता के कारण मैं निर्भय हो चुकी हूँ) ।। १६० ।।

अंदर आसिथ न्यबर छ्रोंडुम,
पवनन रगन कंरनम सथ ।
द्यानु किन्य दय ज़गि कीवल ज़ोनुम,
रंग गव रंगस मीलिथ क्यथ ।। १६१ ।।

अन्तस्स्थितस्य देवस्य बहिरन्वेषणं कृतम् ।
प्राणायाम-प्रयासेन, तस्यावाप्तिर्मया कृता ।
ध्यानयोगेन प्राप्ताऽहं, कैवल्यपद दुर्लभम्,
तेन मे रूपसौभाग्यं, तस्य रूपेण संगतम् ।। १६१ ।।

वे मेरे अन्दर थे मगर मैं उन्हें बाहर ढूँढती रही । तब (प्राणायाम द्वारा) मुझे अपनी रगों के माध्यम से साँत्वना मिली और ध्यानादि योग-क्रिया से इस जगत् की कैवल्य सत्ता को जान लिया । परिणामस्वरूप मेरा रंग (जगत् के) रंग से मिल गया ।। १६१ ।।

कुस हा मालि लूसुय नु पकान पकान,
कुस हा मालि लूसुय नु वौलगान सुमीर ।
कुस हा मालि लूसुय नु मरान तु ज़्यवान,
कुस हा मालि लूसुय नु करान न्यंद्या ॥ १६२ ॥

हा ! को न श्रान्तो मार्गप्रयाणे,
हा ! को न श्रान्तोहि सुमेरु-लङ्घने
हा ! को न श्रान्तो मरणादिचक्रे,
हा ! को न श्रान्तोहि परस्य निन्दया ॥ १६२ ॥

कौन चलते-चलते थका नहीं ? कौन सुमेरु पर्वत को लाँघते-लाँघते थका नहीं ? कौन जन्म-मरण के चक्कर से थका नहीं ? और कौन दूसरों की निंदा करते-करते थका नहीं ? ॥ १६२ ॥

ज़ल हा मालि लूसुय नु पकान-पकान,
सिरयि लूसुय नु वौलगान सुमीर ।
चॆन्द्रम लूसुय नु मरान तु ज़्यवान,
मनुष्य लूसुय नु करान न्यंद्या ॥ १६३ ॥

जलं न श्रान्तं हि प्रवाह मार्गे,
सूर्यो न श्रान्तो हि सुमेरु-लंघने
चन्द्रो न श्रान्तो मरणादिचक्रे
नरो न श्रान्तो हि परस्य निन्दया ॥ १६३ ॥

जल चलते-चलते थका नहीं, सूर्य लाँघते-लाँघते थका नहीं, चन्द्रमा मरते-जन्मते थका नहीं और मनुष्य निंदा करते-करते थका नहीं ॥ १६३ ॥

कुस बब तय कौंसु मांजी,
कंमी लांजी बांजी बठ।
कांल्य गछ्ख कांह ना बब मांजी,
ज़ांनिथ कवु लांजिथ बांजी बठ॥ १६४॥

कस्ते पिता का जननी तवास्ति,
केनापि साकं कथमस्ति संगमः।
विहाय सर्वं गमनं भवेद् यदा,
न कापि माता जनको न कश्चित्॥ १६४॥

कौन तेरा बाप और कौन तेरी माँ? किसके साथ तू सम्बन्ध जोड़ रहा है? कल तू यहाँ से चला जायगा और फिर तेरा न कोई बाप होगा और न माँ। यह सब जानकर तू (व्यर्थ के) सम्बन्ध क्यों जोड़ रहा है? ॥ १६४॥

कांली सथ कौंल गछ्न पातांली,
अकांली ज़ल मालु वरशन प्यन।
मानस टांक्य तय मसकिय प्यांली,
ब्रह्मन तु च्रांली इकवटु ख्यन॥ १६५॥

तादृक् कुकालोहि समागमिष्यति,
रसातलं यास्यति सप्तलोकी।
अकालवृष्टिर्जगतीतले भवेत्,
चाण्डालवद् ब्राह्मण-भोजनं भवेत्॥ १६५॥

ऐसा कुकाल आएगा कि (पृथ्वीलोक पर बढ़ रहे पापाचार के कारण) सातों लोक रसातल में चले जाएँगे। तब असमय वृष्टि होगी और ब्राह्मण व चांडाल एक साथ मांस-मदिरा का सेवन करेंगे॥ १६५॥

अटनुच सन दिथ थावन मटन,
लूब बौंछि बोलन ग्यानुच कथ।
फंट्य फंट्य नेरन तिम कति वटन,
लुकय मालि छुख पूर कड पथ ॥ १६६ ॥

ये छद्मवेषाः स्थित चौरवृत्तयः
प्रदर्शने ज्ञान कथाऽभिभाषिणः
प्राप्यं न किञ्चिन्मम सन्निधानात्
प्रबुद्ध ! दूरात् त्यज पापचारिणः ॥ १६६ ॥

कुटिल व छद्मवेषी इधर का माल चुराकर उधर कर देते हैं और ऊपर से (मारे लोभ के) ज्ञान की बातें बखानने का स्वाँग रचते हैं। ऐसे लोग मिथ्या-प्रदर्शन खूब करते हैं, वे भला इससे पाएँगे क्या ? यदि (रे मनुष्य !) तू प्रबुद्ध है तो ऐसे मिथ्याचार से पग पीछे हटा ले ॥ १६६ ॥

संसारु नाम्य ताव तंत्रुय,
मूडन किंत्रुय तावुनु आये।
ग्यान मुद्रा छय यूगियन किंत्रुय,
सु यूगु कलि किन परजनु आये ॥ १६७ ॥

तप्तमृजीषं विश्वाख्यं, मूढानां कृते सदा
ज्ञानरूपं तदेवास्ति, योगिनां विदितात्मनाम् ॥ १६७ ॥

संसार नाम का यह तवा मूढ़ों के लिए तपाया गया है मगर ज्ञान-मुद्रा योगियों (प्रबुद्धों) के लिए है जो योगकला द्वारा संसार के माहात्म्य को पहचान लेते हैं ॥ १६७ ॥

सोबूर छुय ज़्युर मरुच़ तु नूनुय,
ख्यनु छुय ट्चोंठ तु खेंयस कुस ।
सोबूर छुय सोंनु सुंद टूरुय,
मोंल छुय थोंद तु हेंयस कुस ॥ १६८ ॥

विषयिणां भाति सन्तोषः, कटुतिक्तादिखाद्यवत्
तुल्यं सुवर्णपात्रेण, कस्तं मूल्येन क्रेष्यति ? ॥ १६८ ॥

सब्र (सहिष्णुता) ज़ीरा, मिर्च और नमक के समान (कड़वा) है जो खाने में कडुआ लगता है। सब्र सोने की थाली है, जिसका मूल्य ऊँचा है, अतः इसे खरीदेगा कौन ? (सहिष्णुता का गुण कष्टसाध्य और दुर्लभ है, इसके लिए बड़े से बड़े त्याग की आवश्यकता है) ॥ १६८ ॥

साहेब छु बिहिथ पानय वानस,
सारिय मंगान कें्छाह दि ।
रोंट नो कांसि हुंद रांछ्य नो वानस ।
यि च़े गछ्यि ति पानय नि ॥ १६९ ॥

स्वामी स्वयं पण्यगृहं विधाय,
स्थितस्ततो याचन-तत्परा जनाः
न तत्र कस्यापि निषेध-बाधा
नयस्व यद् वाञ्छसि त्वं सदैव ॥ १६९ ॥

साहिब (ईश्वर) स्वयं दुकान लगाये बैठे हैं। सभी उससे कुछ मांग रहे हैं। (रे मनुष्य !) वहाँ किसी की रोक-टोक नहीं है। तुझे जो भी चाहिए स्वयं उठाकर ले जा ॥ १६९ ॥

संसारस मंज़ बाग कथ शायि रोज़य,
रोज़ि परम शिव शंबू अघूर।
लौलि मंजबाग बोय ललनावन,
जिगरस मंज़बाग करस गूर गूर ॥ १७० ॥

तिष्ठानि विश्वेऽस्मिन् कुत्र, यस्मा-
दघोर-शम्भुः सर्वत्र राजते।
आन्दोलयिष्यामि तमेव क्रोडे,
प्राणेन साकं मृदु लालयामि ॥ १७० ॥

अब मैं इस संसार में भला किस जगह रहूँ क्योंकि यहाँ तो हर-एक स्थान पर परमशिव अघोर शंभु रहते हैं। अतः मैं तो उसी को गोदी में लेकर झुलाऊँगी तथा जिगर से लगाकर डुलाऊँगी ॥ १७० ॥

दोद क्या ज़ानि यस नो बने,
गमुक्य जामु हा वलिथ तने।
गरु गरु फीरुस प्ययम कने,
ड्यूठुम नु कांह ति पननि कने ॥ १७१ ॥

यस्योपरि स्यान्नच दुःखपातः
परस्य पीडां स कथं हि विद्यात्।
कष्टावृतायां मयि प्रस्तराहति,
नं कोऽपि जातो मयि सानुकम्पः ॥ १७१ ॥

जिस पर दुःख न पड़ा हो, वह भला दर्द (की पीड़ा) क्या जाने ? ग़म के वस्त्र पहनकर मैं घर-घर फिरी और मुझपर पत्थर बरसे तथा किसी को भी मेरा पक्ष लेते हुए न देखा ॥ १७१ ॥

ओरु ति पानय योरु ति पानय,
पोंत वाने रोज़ि नु ज़ांह।
पानय गुप्त तु पानय ग्यानी,
पानय पानस मूद नु कांह ॥ १७२ ॥

इतस्ततोऽसौ सर्वत्र दृश्यते,
न लुप्यते दृष्टिपथे कदाचित्
गुप्तोऽपि ज्ञाता सर्वस्य मध्ये
स एव सर्वामरचक्रवर्ती ॥ १७२ ॥

उधर भी वही और इधर भी वही (अर्थात् जिधर भी नजर जाती है, उधर वही दिखते हैं) वह कभी पीछे रहने (छिपने) वाले नहीं हैं। वह स्वयं गुप्त भी है और ज्ञानी भी। वह कभी मरा नहीं—अमर है ॥ १७२ ॥

आसुस कुनिय तय सांपनिस स्यठा,
नज़दीख आसिथ गंयस दूर।
बाहिर बातिन कुनुय ड्यूठुम,
गंयम ख्यथ-च्यथ च्रुवंज़ाह च्रूर ॥ १७३ ॥

एकापि दृश्येऽह मनेकरूपा
पार्श्वस्थिता! तस्य तथापि दूरम्।
कृत्वा हि मां दूरतरं गतं हा!,
चत्वारि पञ्चाशच्चौरमण्डलम् ॥ १७३ ॥

मैं एक थी मगर अनेक बन गई। (उनके) नज़दीक होकर भी दूर रही। बाहर-अन्दर एक ही (शिव) तत्व मुझे दिखा था (जिसे प्राप्त करने के लिए मैं ध्यान-मग्न हो गई) किन्तु ये चौपन चोर (पंचेन्द्रियाँ, आवेग, विकार आदि) सब कुछ खा-पीकर मुझे धोखा देकर चले गये ॥ १७३ ॥

अज़पा गायत्री हंसु हंसु ज़पिथ,
अहम त्राविथ सुय अदु रठ।
येम्य त्रोव अहम सुय रूद पानय,
बो न आसुन छुय वोंपदीश ॥ १७४ ॥

मनसाऽनुश्वासं जप हंस-हंस–
महं-विमुक्तो कुरु ब्रह्मचिन्तनम्
अहं-विरक्तो हि रम स्वरूपे
तवानुरूप उपदेश एषः ॥ १७४ ॥

(रे मनुष्य ! तू) अजपा गायत्री मंत्र का अपनी प्रत्येक सांस में जाप कर। अहं को छोड़कर उस (ब्रह्म-तत्त्व) को धारण कर। जिसने अहं को त्याग दिया वही स्व (आतमभाव) के रूप में स्थिर रहा। उपदेश की बात भी यही है कि 'मैं' को अस्थायी मान लें ॥ १७४ ॥

दमु दमु ओमकार मन परनोवुम,
पानय परान तु पानय बोज़ान।
सूहम पदस अहम गोलुम,
तेंलि लल बो वात्रुस प्रकाश स्थान ॥ १७५ ॥

ओङ्कार-पाठं मनसे प्रतिक्षणं
प्रशिक्षयन्ती स्वयमेव शिक्षिता।
'सोऽहं' पदं प्राप्य विमुक्तमाना,
लल्लाऽहमाकाशगतं प्रपन्ना ॥ १७५ ॥

इस मन को प्रतिपल ऊँकार पढ़ाती रही, स्वयं पढ़ाती रही और स्वयं ही सुनती भी रही। 'सोऽहम्' पद को प्राप्त करने के लिए 'अहम्' को गला दिया तब कहीं जाकर मैं लल प्रकाश-स्थान तक पहुँच सकी ॥ १७५ ॥

यि क्याह् आसिथ यि कुस रंग गोम,
बेरंग करिथ गोम लगु कमि शाठय।
तालव राज़दानि अबख छान प्योम,
जान गोम ज़ान्यम पनु नुय पान ॥ १७६ ॥

काऽऽसं पुनः सम्प्रति काहि जाता,
स्थिता सदा 'तालव राजदानि'वत्।
वशीकृता 'अवखछान' समेन स्वात्मना,
किं भाविमेऽत्र विषये मन एव विद्यात् ॥ १७६ ॥

मैं क्या थी और क्या हो गई। (परमात्मा का ही एक अंश थी किन्तु जन्म लेकर जाने यह किस रंग में रंग गई।) यह मेरा मन मुझे बेरंग बना के छोड़ गया, अब पता नहीं किस ठौर बहाकर पटक देगा। मैं तालवराज़दानि[1] जैसी (संयमी और दृढ़-प्रतिज्ञ) थी किन्तु इस अबखछान[2] रूपी मन ने मुझे मुग्धकर वश में कर लिया। अब मेरा आगे क्या हाल होगा, अच्छा होगा कि बुरा, मेरा दिल ही जानता है ॥ १७६ ॥

करुम ज़ु कारन त्रे कौंमबिथ,
यवु लबख परुलूकस अंख।
वौंथ खस सिरी मंडलस च़ौंमबिथ,
तवय च़ली मरवुन्य शंख ॥ १७७ ॥

द्विविधं कर्म जानीयात्, त्रिविधं कारणं मतम्
समाहर कुम्भकेनैव, प्राप्यते परमं पदम्।
उत्तिष्ठोद्यतो भूत्वा भित्वा सूर्यस्य मण्डलम्,
अनेन विधिना सर्वं, मरणादि तव नंक्ष्यति ॥ १७७ ॥

कर्म दो तरह के (सत् और असत्) तथा कारण तीन तरह के होते हैं। रे जीव! तू कुंभक-योग से सबका समाहार कर जिससे तुझे परलोक में परम-पद की प्राप्ति होगी। तू उठ और सूर्यमंडल को पार कर परमगति को प्राप्त करने के लिए उद्यत हो। इसी से तेरा मरण-भय भी दूर हो जाएगा! ॥ १७७ ॥

१, २ एक कश्मीरी लोककथा के पात्र।

मद प्योंवुम स्यंदु ज़लन यैती,
रंगन लीलंम्य कॆम्य कांच्र ।
कुत्य खेंयम मनुश्य मामसुक्य नंली,
सोंय बो लल तु गव मे क्याह ।। १७८ ।।

अध्यागताऽहं बहुजन्मजातं
पीतंमया सिन्धुजलं प्रभूतम् ।
मांसादनं वहुविधा लीलाव्यधायि
पश्चाच्च चिन्तनपरा तदभिन्नरूपा ।। १७८ ।।

मैंने कई जन्म लिये, कभी छककर सिन्धु का जल पिया, कभी संसार के रंगमंच पर तरह-तरह की लीलाएँ कीं, कभी मांस आदि का भी भक्षण किया—मगर अंततः पाया कि मैं तो वही लल हूँ फिर यह आवागमन का चक्र कैसा ? ।। १७८ ।।

मंरिथ पंच्रबूथ तिम फल हंदे,
च्रेतनु दानु वोंखुर ख्यथ ।
तवय ज़ानख परमु पद छांडि,
हिशी खोशि खोंर कॆंह ति नु ख्यथ ।। १७९ ।।

अस्मिन्नहो भौतिक कायमध्ये
स्थितंहि पञ्चेन्द्रिय - मेष - वृन्दम्
तस्मै त्वया ज्ञान-कणास्तु देया
हत्वा पुनर्दिव्यपदं प्रयाति ।। १७९ ।।

रे व्यग्र प्राणी ! अपनी पंचभूत काया में स्थित पंचेन्द्रियों रूपी मेषों (नर भड़ों) को तू अध्यात्म-ज्ञान का दाना (खाद्य) खिला और तत्पश्चात् उनका वधकर । इसी से तुझे परम-पद की प्राप्ति हो जाएगी, अन्यथा ऐसा न करने पर कोई लाभ न होगा ।। १७९ ।।

देवनागरी लिपि के माध्यम से समस्त भाषाई क्षेत्र

समस्त भाषाओं के सत्साहित्य का समानरूपेण रसास्वादन करें:—

विविध भाषाओं के अनमोल वृहद् ग्रन्थ

जिनमें उन भाषाओं के मूल पाठ को,

तद्वत् उच्चारणों सहित,

देवनागरी लिपि में देते हुए, सुन्दर हिन्दी अनुवाद दिया गया है :—

★ **मलयाळम - महाभारत—** अेळुत्तच्छन् कृत—रचनाकाल—१५ वीं शताब्दी; लिप्यन्तरणकार एवं हिन्दी-अनुवादक— श्री के०ए०सुब्रह्मण्य अय्यर भू० पू० उपकुलपति संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, एवं लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ। मलयाळम का मूल मधुर पाठ देवनागरी लिपि में देते हुए हिन्दी भाषा में अनुवाद दिया गया है। पृष्ठ संख्या लगभग १२२५। मूल्य ४०·००, डाक व्यय पृथक्।

★ **बँगला - कृत्तिवास रामायण—** (आदि, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्ध्या और सुन्दरकाण्ड) रचनाकाल—१५ वीं शताब्दी; मूल बँगला पाठ देवनागरी लिपि में तथा अवधी दोहा-चौपाई में ललित पद्यानुवाद। अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार— श्री नन्दकुमार अवस्थी सम्पादक, वाणी-सरोवर एवं प्रतिष्ठाता भुवन वाणी ट्रस्ट। देवनागरी अक्षरों में ग्रन्थ का चाहे बँगला पाठ सुबोध-सुललित पयार छन्दों में पढ़िये, चाहे अवधी पद्यानुवाद। दोनों का पृथक् अद्भुत आनन्द है। पृष्ठ संख्या लगभग ६२५। मूल्य २५·०० डाक व्यय पृथक्।

★ **बँगला - कृत्तिवास (लंकाकाण्ड)—** रचनाकाल—१५ वीं शती; मूल बँगला पाठ देवनागरी लिपि में तथा हिन्दी गद्यानुवाद—क्रमशः श्री नन्दकुमार अवस्थी एवं श्री प्रबोध मजुमदार। पृष्ठ संख्या ४८८ मूल्य १५·००, डाक व्यय पृथक्।

★ **कश्मीरी - रामावतारचरित—** प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत। रचनाकाल १८ वीं शताब्दी। देवनागरी लिपि में कश्मीरी पाठ का लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद के कर्ता डॉ० शिबन कृष्ण रैणा, हिन्दी विभागाध्यक्ष, राजकीय महाविद्यालय, नाथद्वारा। भूमिका-लेखक डॉ० युवराज कर्णसिंह, स्वास्थ्यमंत्री भारत सरकार। पृष्ठ संख्या लगभग ४८१ मूल्य २०·००। डाक व्यय पृथक्।

★ **उर्दू - शरीफ़ज़ादः (आर्यपुत्र)**– 'उमरावजान अदा' के प्रख्यात लेखक मिर्ज़ा रुस्वा द्वारा रचित अति रोचक उपन्यास। देवनागरी लिपि में लखनऊ की सुमधुर उर्दू भाषा का आनन्द उठाइये। मूल्य ५·००। डाक व्यय पृथक्।

★ **गुरमुखी - श्री जपुजी सुखमनी साहिब**– गुरु नानकदेव और गुरु अर्जुनदेव की अमर वाणी देवनागरी लिपि में। साथ में गीता के सफल पद्यानुवादक ख़ानबहादुर ख्वाजः दिलमुहम्मद का अति प्रसिद्ध प्रवाहमय पद्यानुवाद। अनुवाद को पढ़ते समय पाठक झूम उठता है। मूल्य ५·००। डाक व्यय पृथक्।

★ **अ़रबी - ज़ादे सफ़र** (रियाज़ुस्सालिहीन)— प्रसिद्ध प्रामाणिक ह़दीस (पैग़म्बर के कलाम) के उर्दू अनुवाद ज़ादे सफ़र का देवनागरी लिपि में सारा पाठ देते हुए कठिन उर्दू शब्दों का हिन्दी अर्थ फ़ुटनोट में दिया गया है। इस्लामी धर्म के सदाचार की स्पष्ट झाँकी है। पृष्ठ संख्या ३३६ मूल्य १२·००। डाक व्यय पृथक्।

★ **फ़ारसी - सिर्रें अक्बर**– (शाहज़ादः दाराशिकोह कृत—५० उपनिषदों की फ़ारसी व्याख्या में से ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय और श्वेताश्वतर— इन ९ उपनिषदों का अनुवाद। ग्रन्थ में उपनिषदों का मूल संस्कृत पाठ, उनका भारतीय अनुवाद, साथ में शाहज़ादः दारा की स्पष्ट व्याख्या, पाद-टिप्पणी सहित। एक अभारतीय मुस्लिम शाहज़ादे की तत्वज्ञान में पैठ देखते ही बनती है। हिन्दी रूपान्तरकार हैं काशी विश्वविदयालय के डॉ० हर्षनारायण। पृष्ठ ३००। इस परिश्रमसाध्य ग्रन्थ का मूल्य २०·०० मात्र है। डाक खर्च पृथक्।

★ **बाइबिल - सार**– इस पुस्तिका में बाइबिल में दिये गये सालोमन के नीति-वाक्यों को देते हुए उनके समानान्तर भारतीय नीति-वचनों को उद्धृत किया गया है। मूल्य १·०० मात्र।

वाणी सरोवर

(अपने ढंग का निराला त्रैमासिक पत्र)

इस पत्र में हिन्दी, उर्दू, अ़रबी, फ़ारसी, संस्कृत, पारसी, बंगला, ओड़िया, मराठी, गुरुमुखी, तमिळ, मलयाळम, असमी, गुजराती, तेलुगु, कन्नड, सिन्धी, कश्मीरी, राजस्थानी नेपाली आदि के अनुपम ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद तथा देवनागरी लिपि में उनका मूल पाठ धारावाहिक प्रकाशित हो रहा है। वार्षिक शुल्क १०·०० मात्र।

नवीन ग्राहक बननेवाले सज्जनों को सन् १९७० से अब तक का १०·०० प्रतिवर्ष के हिसाब से शुल्क भेजना उनके हित में होगा। बीते हुए बर्षों के अंक न मँगाने पर धारावाहिक चलनेवाले पहले से शुरू अनेक ग्रंथ उनके संग्रहालय में अपूर्ण रह जायँगे। वैसे ट्रस्ट को आपत्ति नहीं है; आप जिस वर्ष से चाहें ग्राहक बन सकते हैं।